सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

पंडित नीलकंठ दास

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज़

पंडित नीलकंठ दास

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

लो॰स॰स॰ (स॰शो॰सू॰से॰ — जे॰) / सु॰सां॰मो॰ / 4

© लोक सभा सचिवालय, 1990

अगस्त, 1990

मूल्य : 30 रुपये

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अधीन प्रकाशित तथा प्रबंधक, फोटो-लिथो विंग, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

भारतीय संसदीय ग्रुप ने हाल ही में कुछ सुविख्यात सांसदों की वर्षगांठ मनायी है ताकि हमारे राष्ट्रीय एवं संसदीय जीवन में उनके बहुमूल्य और नानाविध योगदान का स्मरण किया जा सके और उसे लेखनीबद्ध किया जा सके। इस संबंध में मार्च, 1990 में "सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज" नामक एक नई श्रृंखला आरंभ की गई थी और डा० राम मनोहर लोहिया, डा० लंका सुन्दरम और डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की वर्षगांठ पर तीन मोनोग्राफ प्रकाशित किये गये। वर्तमान मोनोग्राफ इस श्रृंखला में चौथा है। इसमें वर्ष 1924—45 के दौरान केन्द्रीय विधान सभा के एक सक्रिय सदस्य के रूप में हमारे राष्ट्रीय जीवन के महत्वपूर्ण काल के प्रत्यक्षदर्शी प्रख्यात सांसद पंडित नीलकंठ दास — एक विधायक और स्वतन्त्रता सेनानी — द्वारा की गई बहुमूल्य सेवाओं और योगदान को स्मरण करने और लेखनीबद्ध करने का प्रयास किया गया है।

इस मोनोग्राफ के दो भाग हैं। पहले भाग में पंडित नीलकंठ दास का संक्षिप्त जीवन परिचय है जिसमें उनके आरंभिक जीवन, उनकी शिक्षा, उनके सामाजिक और राजनैतिक जीवन और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका शामिल है।

दूसरे भाग में केन्द्रीय विधान सभा में देश के समक्ष तत्कालीन विविध स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों और समस्याओं पर वाद-विवाद में भाग लेते हुए पंडित नीलकंठ दास द्वारा दिये गए भाषण शामिल किये गये हैं। इस भाग में पंडित नीलकंठ दास के चुने हुए भाषणों का सम्पादन करते समय, उनकी विशिष्ट शैली को यथावत रखने का पूरा प्रयास किया गया है।

पंडित नीलकंठ दास की वर्षगांठ के अवसर पर हम उनकी स्मृति में भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और हमें आशा है कि यह मोनोग्राफ पाठकों के लिये उपयोगी और रुचिकर सिद्ध होगा।

नई दिल्ली;
अगस्त, 1990

रवि राय
अध्यक्ष, लोक सभा
तथा
अध्यक्ष, भारतीय संसदीय ग्रुप

विषय सूची

भाग एक

जीवन वृत्त

1

पंडित नीलकंठ दास
जीवन वृत

(1)

भाग दो

उनके विचार

पंडित नीलकंठ दास द्वारा केन्द्रीय विधान सभा में दिए गए
कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धरण

2

उड़िया भाषी क्षेत्रों के विलय सम्बन्धी संकल्प
(12)

3

भारतीय वित्त विधेयक (नमक कर)
(24)

4

व्यापार विवाद विधेयक
(42)

5

गांवों में पंचायतों की स्थापना संबंधी संकल्प
(49)

6

बाल विवाह प्रतिरोध (संशोधन) विधेयक
(53)

7

रेलवे बजट और भारतीय उद्योगों का विकास
(57)

8

देश के संसाधनों का उपयोग
(61)

9

भारत को राज्य संघ बनाने के बारे में संकल्प
(66)

10

दिल्ली विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक
(74)

11

राजनैतिक कैदियों और बंदियों के प्रति व्यवहार संबंधी विधेयक
(79)

12

उड़ीसा में अकाल
(82)

13

संयुक्त राष्ट्र संघ के स्थायी खाद्य और कृषि संगठन
के गठन हेतु संकल्प
(86)

14

हिन्दू विवाह निर्योग्यता निवारण विधेयक

(90)

15

राष्ट्रीय युद्ध संगठन

(96)

भाग एक

जीवन वृत्त

1

पं० नीलकंठ दास : जीवनवृत्त

आधुनिक उड़ीसा के निर्माताओं में से एक पं० नीलकंठ दास 5 अगस्त, 1884 को उड़ीसा के पुरी जिले के श्री रामचन्द्र पुर गांव में पैदा हुए थे। मध्य वर्गीय रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न पं० नीलकंठ अपने मां बाप के इकलौते पुत्र थे। उनके जन्म पर बहुत धूमधाम से उत्सव मनाया गया और उन्हें भगवान नीलकंठ का उपहार मानकर उनका यही नामकरण किया गया। उनके पिता श्री आनन्द दास अपनी भू-सम्पत्ति की देखरेख करते थे और उनकी माता श्रीमती हीरा देवी एक धार्मिक और घरेलू महिला थी। उनके दादा भी सरकारी सेवा में तहसीलदार थे। वर्ष 1905 में पं० नीलकंठ दास का विवाह पुरी के श्री हरिहर रथ की पुत्र कुमारी राधामणि देवी के साथ हुआ। यद्यपि वह अधिक पढ़ी लिखी नहीं थी किन्तु अपने पति के प्रति वह पूरी तरह निष्ठावान थी और उन्हें उत्साहित करती थी तथा राष्ट्र और लोगों की सेवा हेतु उनके लिए प्रेरणा स्रोत बनी रही।

उनकी शिक्षा

पं० नीलकंठ दास की आरम्भिक शिक्षा अपने गांव की पाठशाला में पारम्परिक ढंग से शुरू हुई। मिडिल वर्नेकुलर स्कूल में शिक्षा के बाद वह पुरी चले गये और पुरी जिला स्कूल में दाखिला ले लिया जहां उन्होंने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। वह अपने लड़कपन में एक प्रतिभाशाली छात्र थे जैसा कि इस बात से स्पष्ट है कि पुरी जिला स्कूल में उन्हें निचली क्लास में दाखिला मिला जिससे कि वह अंग्रेजी सीख सकें किन्तु दूसरे वर्ष में ही उन्हें दोहरी तरक्की मिली। उन्हें संस्कृत का बहुत ज्ञान था और किशोरावस्था से ही उन्होंने संस्कृत के श्लोक लिखने शुरू कर दिये थे। रावेनशाह कालेज, कटक से स्नातक होने के बाद स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए वह कलकत्ता विश्वविद्यालय चले गये। 1911 में दर्शन शास्त्र में एम०ए० की पढ़ाई पूरी करने के बाद वह उड़ीसा लौट आये और पं० गोपबंधु दास द्वारा स्थापित प्रसिद्ध सत्यवाड़ी स्कूल में अध्यापक नियुक्त हो गये।

सत्यवाड़ी स्कूल के साथ संबंध

वर्तमान शताब्दी की पहली तिहाई में उड़ीसा के जीवन में व्यापक विकास हुआ जिसमें

एक नया स्कूल सत्यवाड़ी या सखी गोपाल वन विद्यालय (गुरूब स्कूल) पुरी के निकट पं० गोपबंधु दास द्वारा स्थापित किया गया। यह स्कूल उड़ीसा के तत्कालीन औपनिवेशिक प्रभुत्व वाले समाज से अंधकार दूर करने के लिए स्थापित किया गया था। इस स्कूल में कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त तथा प्रतिभाशाली युवक अध्यापक के रूप में कार्य करते थे जिनमें पं० गोपबंधु दास, पं० नीलकंठ दास, पं० गोदावरी मिश्र, पं० कृपासिन्धु मिश्र और आचार्य हरिहर दास थे जो पांच मित्र अथवा पंच सखा के नाम से प्रसिद्ध थे। पं० नीलकंठ दास कट्टर नैतिकतावादी, अनुशासनप्रिय, राष्ट्रीय शिक्षा के प्रबल समर्थक थे और उन्हें शिक्षा और समाज सुधारों के संबंध में अपने विचारों को कार्यान्वित करने का अवसर सत्यवाड़ी स्कूल के माध्यम से प्राप्त हुआ। इस स्कूल ने दशाब्दि से अधिक समय तक शिक्षा, राजनीति, साहित्य और सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवा के लिए एक जगमगाते हुए केन्द्र के रूप में कार्य किया। इसके अतिरिक्त इस स्कूल ने क्षेत्र के इतिहास को बनाने में विशेष रूप से युवकों को स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने हेतु प्रेरित करने में विशेष भूमिका बनाई। पं० नीलकंठ दास का जो अपने सहयोगियों के साथ उड़ीसा में सामाजिक तथा आर्थिक बुराईयों को समाप्त करने में लगे थे, पक्का विश्वास था कि युवकों का उचित विकास करके और सार्थक प्रशिक्षण देकर उनकी स्थिति में सुधार किया जा सकता है। उनका शिक्षा का ढंग ईश्वरीय, भारतीय पारम्परिक शिक्षा और पश्चिम के प्रगतिवादी विचारों का सम्मिश्रण था। उन्होंने भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सांस्कृतिक जागृति पैदा करने के लिए पश्चिमी शिक्षा को एक महत्वपूर्ण विषय मानकर उसका समर्थन किया। लेकिन वे इसे सदैव भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने इस स्कूल के माध्यम से इन्हीं विचारों को आगे बढ़ाया और इस स्कूल में छात्रों को दैनिक जीवन् में अनुशासन, उच्च नैतिकता, सादगी और संयम की महत्ता समझने पर बल दिया जाता था। अध्ययन के साथ साथ छात्रों को जीवन का सार भी सिखाया जाता था जिससे वह पूर्ण मानव बन सकें और आत्मनिर्भर, साहसिक और आत्मविश्वास से भरपूर होकर विकास और अपने भाईयों के उत्थान के कार्य में लग सकें। छात्रों के लिए शारीरिक शिक्षा तथा समाज सेवा अनिवार्य थी। साहित्यिक चर्चा को प्रोत्साहित किया जाता था और सप्ताह के अन्त में छात्र वक्तृत्वकला निबंध, साहित्यिक प्रतियोगिताओं और राष्ट्रीय इतिहास और संस्कृति पर चर्चाओं, कविता पाठ तथा ऐसी ही अन्य गतिविधियों में भाग लेते थे। छात्रों में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी जाती थी। स्कूल के पाठ्यक्रम का भाग यह भी था कि छात्रों को ऐतिहासिक स्थानों पर पैदल ले जाया जाये ताकि पुरानी शान के बारे में उनकी याद ताजा की जा सके।

बिहार और उड़ीसा के तत्कालीन उपराज्यपाल सर एडवर्ड गेट एक बार सत्यवाड़ी आये और उन्होंने पं० नीलकंठ दास से जो उस समय स्कूल के प्रिंसिपल थे, अंग्रेजी में कहा, "मुझे सी आई डी की रिपोर्ट मिली है कि आपके स्कूल में बम बनाये जाते हैं।"

इस पर पं० नीलकंठ दास ने छात्रों की ओर इशारा करके कहा कि "हां, यह जीते जागते बम हैं जो भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का नाश करेंगे।"

9 वर्ष की लगातार निष्ठावान सेवा के बाद सत्यवाड़ी में कुछ असंतुष्टता दिखायी देने लगी। व्यक्तित्वों का टकराव आवश्यक हो गया क्योंकि पं० गोपबंधु दास 1918 में स्कूल के प्रशासन की पद्धति ऐसी बनाना चाहते थे जिसके अंतर्गत स्कूल के प्रमुख के पद पर बारी बारी से नियुक्ति की जाये। तत्पश्चात पं० नीलकंठ दास अपने गांव चले गये। बाद में 1918 में सर आशुतोष मुखर्जी के निमंत्रण पर वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग में उड़िया और तुलनात्मक भाषा शास्त्र के प्राध्यापक बने। यह स्कूल उस समय राष्ट्रीय स्कूल में बदल गया जब 1921 में पंच सखा, असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। पं० नीलकंठ दास स्कूल के मुख्य पर्यवेक्षक (सुपरवाइजर) और हैडमास्टर बन गये जब 1928 में पं० गोपबंधु दास का असमय निधन हो गया तो पं० नीलकंठ दास ने उनका स्थान ले लिया।

एक साहित्यकार के रूप में

पं० नीलकंठ दास एक विख्यात साहित्यकार थे। वह महान विद्वान और बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे और उन्होंने उड़िया भाषा और साहित्य को बहुत समृद्ध किया। उन्हें तत्कालीन उड़िया भाषा के सर्वप्रथम विशेषज्ञ के रूप में जाना जाता है। उनके प्रकाशनों में ये प्रमुख हैं: **आत्म जीवनी, भक्ति गाथा, प्रणयनी, कोणार्क, कारवेला, संस्कृत और संस्कृति, उड़िया व्याकरण, दास नायक, सिलंका गीता, सिलंका रामायण,** आदि। उनके निबंध **'मेरी भूलें'** की तारीफ राव बहादुर मधुसूदन राव ने भी की जो उड़ीसा के भक्ति संगीत के महान कवि थे। उनकी धर्म, दर्शनशास्त्र, इतिहास, पुरातत्व विज्ञान और भाषा शास्त्र जैसे विभिन्न विषयों में गहन रूचि थी। वह साहित्य के माध्यम से देशभक्ति का प्रचार करते थे। पं० नीलकंठ दास का उड़िया साहित्य में एक दार्शनिक लेखक और साहित्यिक आलोचक के रूप में भी प्रमुख स्थान रहा है।

वह एक सुप्रसिद्ध पत्रकार भी थे। वह उड़िया की एक मासिक साहित्यिक पत्रिका **नवभारत** के 1933 से 1945 तक संपादक थे। दैनिक नवभारत (उड़िया) में, जिसके वह संपादक भी थे, उनके सामयिक लेख और संपादकीय लेखों का आशय लोगों में राष्ट्रीय भावना पैदा करना था। स्वतंत्रता के बाद वह उड़ीसा साहित्य अकादमी के प्रथम अध्यक्ष बने। उन्हें अपनी आत्मकथा के लिए राष्ट्रीय अकादमी पुरस्कार भी मिला। उनकी पुस्तक **कमेंट्री आन भागवतगीता** (उड़िया में) के लिए लिखा गया उनका प्राक्कथन प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर एक अत्यन्त पांडित्यपूर्ण शोधग्रन्थ है। कुछ समय के लिए उन्होंने **'डेली समाज'** और **'दि सेवा'** का भी संपादन किया।

पं० नीलकंठ दास उत्कल विश्वविद्यालय समिति के सभापति भी थे। इस समिति की

सिफारिशों के कारण उत्कल विश्वविद्यालय की स्थापना हुयी। उन्हें 1955 में विश्वविद्यालय का उप-कुलाधिपति बनाया गया। उत्कल विश्वविद्यालय ने उन्हें "डाक्टरेट आफ लिट्रेचर" की मानद उपाधि प्रदान की। उन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा 1960 में पद्मविभूषण पदक भी प्रदान किया गया।

एक सामाजिक कार्यकर्ता और एक समाज सुधारक के रूप में

वह अपने समय के एक महान सामाजिक कार्यकर्ता और समाज सुधारक थे। यद्यपि वह एक रूढ़िवाद ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए, उन्होंने सदैव तत्कालीन समाज में विद्यमान सामाजिक अंधविश्वासों, पूर्वाग्रहों और जाति-भेदों के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्होंने विभिन्न तरीकों से ब्राह्मणों द्वारा स्थापित भेदभाव की परम्पराओं के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़ने और सामाजिक उत्थान के युग में प्रवेश करने के लिए संघर्ष किया।

सत्यवाडी स्कूल में पंडित नीलकंठ दास ने "मूंछ विद्रोह" का भी नेतृत्व किया जिसमें अनेक ब्राह्मण लड़कों ने जाति प्रथा के विरोध में मूंछें रखे जाने का जगह जगह समर्थन किया। उन्होंने भी मूंछें रखी। ऐसा करना उड़ीसा के ब्राह्मण समुदाय में वर्जित माना जाता था। इस पर रूढ़िवादी ब्राह्मणों ने असंतोष व्यक्त किया। सत्यवाडी में सभी जातियों के छात्रों के लिए समुदाय रात्रि भोजों का भी आयोजन किया गया। स्थानीय ब्राह्मणों ने, जो पहले से स्कूल के अध्यापकों के शास्त्र-विरोधी आचरण पर अत्यन्त खिन्न थे, स्कूल भवन और पुस्तकालय को आग लगा दी।

पंडित नीलकंठ दास जाति प्रथा, विशेष रूप से हिन्दू समाज में अस्पृश्यता की प्रथा और अन्य विद्यमान अंधविश्वासों के विरोधी थे। उन्होंने बाल विवाह के विरुद्ध जोरदार संघर्ष किया। महिला उत्थान में विश्वास रखते हुए उन्होंने महिला शिक्षा का भी समर्थन किया।

उन दिनों पुरी जिले में हैजे की महामारी प्रायः फैलती थी। पंडित नीलकंठ दास अपने छात्रों के साथ रोगियों की देखभाल करने के लिए गांव-गांव जाते थे। उन्होंने रोगियों की जान बचाने के लिए पुस्तकें पढ़कर होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति आरंभ की क्योंकि उस समय तक हैजे का इलाज करने के लिए ऐलोपैथी और अन्य चिकित्सा पद्धतियों की खोज नहीं हुयी थी। उन्होंने हैजा के रोगियों को होम्योपैथी की दवाइयां देकर उनकी भारी सहायता की। एक बार पुरी जिले में भारी सूखा पड़ा और उस समय भी वह पीड़ितों को राहत पहुंचाने के लिए सूखाग्रस्त क्षेत्रों में गये। अतः मानव-जाति के प्रति उनकी सामाजिक सेवाओं के लिए उन्हें सदैव याद रखा जायेगा।

स्वतंत्रता आन्दोलन में भूमिका

पं० नीलकंठ दास का पंडित गोपबंधु दास के साथ निकट सम्पर्क का, जो उनके कालेज के दिनों में हुआ था, उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। एक बार पंडित नीलकंठ दास अपने सहयोगी आचार्य हरिहर के साथ पंडित गोपबंधु के सुआन्डो गांव को देखने गए। भार्गवी नदी के तट पर बैठकर पंडित गोपबंधु दास ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि उनमें से कोई भी सरकारी नौकरी नहीं करेगा। वे अपने देश और अपने देशवासियों के लिए कुछ करेंगे। रावनशाह कालेज में पं० नीलकंठ दास, पंडित गोदावरीस और आचार्य हरिहर दास निकट संपर्क में आए और उन्होंने एक ऐसा छोटा सा दल बनाया जिसने अपनी गतिविधियां पंडित गोपबंधु के विचारों तक सीमित रखीं और पंडित गोपबंधु दास असहयोग आन्दोलन के दूत के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते रहे और स्वराज्य के अर्थ और उसकी आवश्यकता बताते रहे और इसकी प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करते रहे। पंडित नीलकंठ ने अपने निकट सहयोगियों के साथ मिलकर सम्भलपुर जिले में असहयोग आन्दोलन का संदेश पहुंचाया। उन्होंने वहां पर सत्यवाडी के माडल पर एक राष्ट्रीय स्कूल की स्थापना का पर्यवेक्षण भी किया।

पंडित नीलकंठ दास ने **सेवा** नामक एक समाचार पत्र प्रकाशित किया था और असहयोग आन्दोलन की सफलता के लिए जनता की राय जुटाई। उन्होंने अनेक बैठकों तथा प्रदर्शनों का आयोजन किया और उत्तेजक भाषण दिये। जब राष्ट्रवाद की भावना अपनी चरमसीमा पर थी, पंडित नीलकंठ गांधीजी के साथ उनके उड़ीसा दौरे पर गये। इस दौरे से उड़ीसा में स्वतंत्रता आन्दोलन तेज हो गया। अपनी राष्ट्रवादी गतिविधियों के लिये पंडित नीलकंठ 1923, 1932 और 1933 के दौरान कई बार जेल गये।

केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य के रूप में

पं० नीलकंठ दास दो दशकों से अधिक की अवधि (1924—1945) के लिये केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य रहे। वह स्वराज्य पार्टी में शामिल हो गये थे और उसके निष्ठावान सदस्य रहे। वह विधानसभा में कुछ समय के लिए स्वराज्य पार्टी के महासचिव थे, उस समय पंडित मोतीलाल नेहरू इसके नेता थे। वह अंग्रेजों के विरुद्ध संवैधानिक तरीकों के माध्यम से संघर्ष करने में विश्वास रखते थे।

उन्हें उस समय देश के समक्ष अनेक समस्याओं की गहरी जानकारी थी। वह सदैव उन समस्याओं का व्यावहारिक हल खोजने का प्रयास करते थे। केन्द्रीय विधान सभा के एक सक्रिय सदस्य होने के नाते वह स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और यहां तक कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर वाद-विवादों में गहरी रूचि लेते थे। उन्होंने यह दलील दी कि तटीय क्षेत्रों में

रहने वाले लोगों को अपनी स्वयं की खपत के लिए शुल्क-रहित नमक बनाने का अधिकार दिया जाना चाहिए। उन्होंने उत्तेजक भाषण देकर उड़ीसा के अकाल पीड़ित लोगों के हितों की रक्षा की।

जिस भी विषय पर वह बोलते थे उस पर अपने विचार वह दृढ़तापूर्वक रखते थे। उन्होंने अनेक विषयों अर्थात् ग्राम पंचायतों की स्थापना, बाल विवाह निरोध विधेयक, हिन्दू विवाह निर्योग्यता निवारण विधेयक, भारतीय उद्योगों का विकास, नमक-कर, राष्ट्रीय युद्धमोर्चा, राजनीतिक कैदियों एवं बन्दियों के साथ व्यवहार और संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन आदि पर भाषण दिये। उनके भाषणों से यह स्पष्ट है कि वह महान समाज सुधारक और पक्के राष्ट्रभक्त थे।

एक पृथक उड़ीसा प्रान्त के लिये संघर्ष

पंडित नीलकंठ दास ने पड़ौसी प्रान्तों में फैले हुए उड़िया भाषी क्षेत्रों के एक समान प्रशासन के अन्तर्गत विलय और एक पृथक उड़ीसा प्रान्त के लिये संघर्ष किया। पंडित नीलकंठ दास और श्री भुवानन्द दास ने, जो केन्द्रीय विधान सभा के उड़िया सदस्य थे, भारत सरकार पर एक "संयुक्त उड़ीसा" की अपनी मांग को मनवाने के लिये दबाव डालते रहे। पंडित नीलकंठ दास उड़ीसा प्रान्त के गठन के लिये विधान सभा में आवाज उठाते रहे।

पंडित नीलकंठ दास द्वारा 31 जनवरी और 1 फरवरी, 1927 को विधान सभा में इस संबंध में अनेक प्रश्न पूछे जाने पर तत्कालीन होम मेम्बर श्री अलैग्जेंडर मडीमैन ने उड़िया विधायकों को आश्वासन दिया कि सम्बन्धित स्थानीय सरकारों के साथ परामर्श करने के बाद कतिपय उड़िया-भाषी क्षेत्रों द्वारा किये गये दावे पहले से सरकार के विचाराधीन हैं। वह उड़िया भाषी क्षेत्रों के भविष्य के लिये कोई निश्चित योजना लागू करने से पूर्व लोगों की राय जानने के लिये भी सहमत हो गये।

परन्तु होम मेम्बर द्वारा दिये गये आश्वासन के बावजूद पंडित नीलकंठ दास ने सभी उड़िया-भाषी क्षेत्रों को एकल स्थानीय प्रशासन के अन्तर्गत रखने के लिये तुरन्त कदम उठाने हेतु सरकार पर दबाव डालने के लिये 8 फरवरी 1927 को निम्नलिखित संकल्प पेश किया:

> "कि यह विधान सभा उड़िया-भाषी क्षेत्रों को एकल स्थानीय प्रशासन के अन्तर्गत रखने संबंधी योजना को सहर्ष सभा पटल पर रखने या प्रकाशित करने के लिए गवर्नर-जनरल-इन-कांउसिल से सिफारिश करती है।"

संकल्प पर विधान सभा में विस्तार से वाद-विवाद किया गया। वाद-विवाद में भाग लेते हुए पंडित नीलकंठ दास ने, जिन्होंने उड़ीसा के इतिहास का सर्वेक्षण किया जिसके

परिणामस्वरूप इसका प्रशासनिक विभाजन हुआ और इसके लोगों पर ऐतिहासिक अन्याय हुआ। एक पृथक एवं विशिष्ट प्रान्तीय प्रशासन के अन्तर्गत एकत्रित करने पर जोर दिया। वह उप-प्रान्त के संवैधानिक स्वरूप तथा प्रणाली से सन्तुष्ट नहीं थे। अतः वह एक ऐसा प्रान्त चाहते थे जिसके पहले "उप" शब्द न लगा हो क्योंकि वह जानते थे कि उप-प्रान्त निश्चय ही अन्य बड़े प्रान्त के अधीनस्थ होगा।

उड़िया भाषी समय के साथ-साथ यह मानने लगे कि कांग्रेस पार्टी उनकी समस्या को हल नहीं कर सकती। सन् 1928 में पंडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता वाली नेहरू समिति ने भाषा के आधार पर भारत के प्रान्तों का पुनर्गठन करने का सुझाव दिया, परन्तु उड़िया भाषियों का कोई ज्ञापन अथवा अभ्यावेदन न होने के कारण उड़ीसा प्रान्त के लिए कोई निश्चित सिफारिश नहीं की।

दिसम्बर, 1928 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में एक प्रतिनिधि श्री निरंजन पटनायक को अध्यक्ष पंडित मोतीलाल नेहरू ने उनके प्रतिवेदन में संशोधन करने के प्रस्ताव को पेश करने की अनुमति नहीं दी, बल्कि पंडित मोतीलाल ने उड़िया भाषी सदस्यों की पृथक प्रान्त की मांग पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की। इससे उड़िया भाषी प्रतिनिधियों में बड़ा असंतोष पैदा हो गया। इस पर पंडित नीलकंठ दास 300 उड़िया भाषी प्रतिनिधियों के साथ अधिवेशन से उठकर चले गए। उन्होंने पंडित मोतीलाल नेहरू के विनिर्णय के विरुद्ध कलकत्ता में जलूस निकाला।

इन घटनाओं से उड़ीसा में कांग्रेसियों का मोह भंग हो गया। उड़िया भाषी नेताओं ने 2 मई, 1931 को कटक में हुए सर्वदलीय सम्मेलन में अपने आपसी मतभेदों को भुला दिया और एक मत से श्री हरे कृष्ण महताब का यह प्रस्ताव पास किया कि पृथक उड़ीसा प्रान्त के निर्माण के लिए प्रयत्न करने के लिए एक समिति बनाई जाए। पंडित नीलकंठ दास को समिति का अध्यक्ष चुना गया और उनसे अनुरोध किया गया कि वे प्रस्तावित सीमा आयोग के सम्मुख उड़िया भाषियों का पक्ष रखें।

उड़िया राष्ट्रवादियों ने दो मुद्दे रखे, एक तो यह कि विभिन्न प्रान्तों के प्रशासन के अन्तर्गत आने वाले उड़िया भाषी क्षेत्रों का विलीनीकरण किया जाए और दूसरे यह कि एकीकृत उड़िया भाषी क्षेत्रों को पृथक अस्तित्व प्रदान किया जाए। विलीनीकरण और पृथक्करण को लेकर मतैक्य नहीं था। साईमन कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद पंडित नीलकंठ दास ने 22 मई, 1931 को सर्वदलीय सम्मेलन में उड़िया आंदोलन के इन दो मुद्दों की ओर ध्यान दिलाया। उन्होंने कहा कि विलीनीकरण और पृथक्करण को लेकर भ्रांति पैदा नहीं की जानी चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि पृथक राज्य बनाये बिना विलीनीकरण नहीं चाहिये।

सरकार ने सितम्बर, 1931 में वित्तीय तथा अन्य पहलुओं की दृष्टि से उड़ीसा के लिए

पृथक प्रशासन की स्थापना करने के प्रश्न की जांच करने और उड़ीसा को एक पृथक प्रांत बनाये जाने की सूरत में उसकी सीमाओं के पुनर्निधारण के बारे में सिफारिश करने के लिए सीमा आयोग का गठन करने की घोषणा की। इस घोषणा के बाद पंडित नीलकंठ दास ने एक तार भेजकर गांधी जी से अपील की "हम चाहते हैं कि यदि उड़ीसा को एक पृथक प्रांत बनाया जाता है तो प्रांतों के अन्तर्गत आने वाले उड़िया भाषी क्षेत्रों को इसमें शामिल किया जाये। मैं यह विश्वास करता हूं कि अपनी अन्य महत्वपूर्ण पूर्व व्यस्तताओं के बावजूद आप उत्कल के लोगों की इस मांग को ध्यान में रखेंगे।" उन्होंने इसी आशय का एक तार पंडित जवाहर लाल नेहरू को भी भेजा।

सीमा आयोग के गठन के समाचार से उड़िया भाषी लोगों के आंदोलन में और तेजी आयी। पंडित नीलकंठ दास ने अपने मित्रों के साथ मिदनापुर में भी प्रचार कार्य किया। उन्होंने मिदनापुर को उड़ीसा में मिलाने के लिए राष्ट्रवादी आंदोलन में उड़िया भाषी लोगों को शामिल होने के लिए कहने के वास्ते सभायें की, संस्थायें बनायीं तथा उस क्षेत्र का विस्तृत दौरा किया।

उड़ीसा का दौरा करने के समय सीमा आयोग ने सिंहभूम का भी दौरा किया। परन्तु उस समय तक कांग्रेस और ब्रिटिश प्रशासन के बीच संबंध बहुत कटु हो गये थे। और 1932 में सरकार ने कांग्रेस को अवैध घोषित कर दिया। पंडित नीलकंठ दास ने सिंहभूम में आयोग का बहिष्कार करने के निर्देश दिये। पंडित नीलकंठ दास का लम्बे समय से संजोया हुआ सपना तब साकार हुआ जब एक अप्रैल, 1936 को उनके निष्ठापूर्ण संघर्ष के परिणामस्वरूप पृथक उड़ीसा राज्य अस्तित्व में आया।

पंडित गोपबंधु दास की मृत्यु के बाद पंडित नीलकंठ दास दो बार लगातार उड़ीसा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे। 1940 में दूसरे विश्वयुद्ध के संबंध में कांग्रेस के विचारों को लेकर उन्होंने पार्टी छोड़ दी। उन्होंने युद्ध संबंधी कार्यों में सरकार की मदद करने के लिए राष्ट्रीय युद्ध मोर्चे के नेता के रूप में कार्य किया। जुलाई, 1941 में उन्होंने पं० गोदावरी मिश्र के साथ युद्ध संबंधी प्रत्यनों को बढ़ावा देने की सक्रिय अपील की और लोगों को सलाह दी कि वे युद्ध कोष के लिए पैसा दें। ताकि उसे देश को बाहरी आक्रमण से बचाने पर खर्च किया जा सके। सन् 1941 में उन्होंने उड़ीसा में मुस्लिम लीग के साथ मिलकर एक मिली-जुली सरकार बनायी।

उड़ीसा विधान सभा में भूमिका

लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के लिए पहले आम चुनाव 1952 में हुए। उस समय तक पंडित नीलकंठ दास ने स्वतन्त्र जनसंघ नामक एक पार्टी का गठन कर लिया था। उन्होंने चुनाव लड़ा और उड़ीसा विधान सभा के लिए चुने गये। कुछ समय बाद वे

कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गये। सन् 1957 में वे फिर विधान सभा के लिए चुने गये तथा उसके अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए। अध्यक्ष के रूप में उन्होंने निष्पक्ष रूप से काम किया और हमेशा सदन में व्यवस्था बनाये रखी। उन्होंने विधान सभा से संबंधित नियमों और प्रक्रियाओं को उसी भावना से लागू करने का प्रयत्न किया जिस भावना से वे बनाये गये थे। वे सदन में अपना विनिर्णय देने और टिप्पणी करने में बड़ी सावधानी बरतते थे।

पंडित नीलकंठ दास का निधन 16 नवम्बर, 1967 को हुआ, वे बड़े ही सादा, शान्त और नम्र स्वभाव के व्यक्ति थे। वह अदभुत प्रतिभा के धनी थे और उन्होंने स्वतंत्रता सेनानी, संसदविद, सामाजिक कार्यकर्ता और सुधारक, महान विद्वान, शिक्षाविद और उड़िया भाषा के अदभुत लेखक के रूप में बहुमुखी प्रतिभा वाली भूमिकायें निभायी। उन्हें हमेशा आधुनिक उड़ीसा के निर्माता के रूप में याद किया जाता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. दास, एन० के०: नीलकंठ ग्रंथावली (खण्ड 1), कटक, अनन्त मिश्र, 1973.
2. दास, कुंजबिहारी (डा०): जीवनी ओ जीवना, कटक, फ्रेंड्स पब्लिशर्स, 1981.
3. दास, श्रीराम चन्द्रः गोपबंधु दास, नई दिल्ली नेशनल बुक ट्रस्ट, 1976.
4. मिश्र, पी० के०,: दि पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ उड़ीसाः 1900—1936, नई दिल्ली, ओरियंटल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1979.
5. महन्ती, निवेदिताः उड़िया नेशनलिज्म, क्वेस्ट फार ए यूनाइटेड उड़िया, 1866—1936, नई दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन्स, 1982.
6. सेन, एस० के० : डिक्शनरी आफ नेशनल बायोग्राफी (खण्ड 1), कलकत्ता, इंस्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल स्टडीज, 1972.

भाग दो

पंडित नीलकंठ दास के विचार

पंडित नीलकंठ दास द्वारा केन्द्रीय विधान सभा में दिये गये कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धरण

2

उड़िया भाषी क्षेत्रों के विलय संबंधी संकल्प*

महोदय मैं यह प्रस्ताव करता हूं,

कि यह सभा "गवर्नर जनरल इन काउंसिल" से यह सिफारिश करती है कि वह सभी उड़िया भाषा-भाषी क्षेत्रों को एक स्थानीय प्रशासन के अंतर्गत लाने की योजनाओं को प्रस्तुत अथवा प्रकाशित करने के लिए तुरन्त कदम उठाने की कृपा करें।

वास्तव में गत 25 वर्षों अथवा उससे भी अधिक समय से यह मामला देश के समक्ष हमारे राजनैतिक मुद्दों में ज्वलंत रहा है। इस आन्दोलन का इतिहास बहुत पुराना है और वर्ष 1903 से, जब पहली बार तत्कालीन गृह सचिव ने यह आवश्यक समझा था कि सभी उड़िया भाषा-भाषी क्षेत्रों को एक ही प्रशासन के अंतर्गत रखा जाए, परन्तु कुछ कारणों से अथवा अन्य प्रशासनिक सुविधाओं के कारण इसे हर बार स्थगित किया जाता रहा। हमें यह आश्वासन दिए गए हैं कि हमारे सभी अलग रह गए क्षेत्र एक ही सरकार के अंतर्गत कर दिए जायेंगे। कभी-कभी यह आशा दिलाई गई है कि उप-प्रांत बनाया जायेगा परन्तु ऐसा कोई व्यावहारिक रूप से कुछ नहीं हुआ है जिससे उड़ीसा के लोगों को संतोष हो सके। 1920 में पिछले "इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल" के अंतिम दिनों में माननीय श्री सच्चिदानंद सिन्हा ने इस संबंध में एक संकल्प प्रस्तुत किया था। सरकार ने आश्वासन दिया था कि वह इस मामले की जांच करेगी और शायद वह सुधार योजना को लागू करने से पूर्व कुछ करना भी चाहती थी। वास्तव में सुधार परिषद का पहला कार्यकाल समाप्त हो गया था और सरकार इस मामले पर कोई पहल नहीं कर पाई। दूसरे कार्यकाल के प्रारम्भ में मेरे मित्र श्री बी० डी० दास के एक प्रश्न के उत्तर में हालांकि सरकार मद्रास के उड़िया भाषी लोगों के बारे में जांच-पड़ताल करने के लिए एक जांच समिति गठित करने पर सहमत हो गई थी। तदनुसार, फिलिप-डफ आयोग को इस मामले की जांच के लिए भेजा गया और रिपोर्ट देने को कहा गया। हालांकि उसकी रिपोर्ट सदन के सभी सदस्यों को नहीं दी गई और कार्यालय में प्रस्तुत की गई थी। गंजम और विशाखापत्तनम जिलों में अपनी सभी जांच के पश्चात उन्होंने यह स्पष्ट मामला बनाया कि लोगों ने वर्तमान उड़ीसा संभाग में अपने साथी लोगों के साथ मिलने के लिए उत्कृष्ट इच्छा और उत्साह जाहिर किया है—मेरा मतलब बिहार

*केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद, 8 फरवरी, 1927, पृ० 546-52 और 571-74।

और उड़ीसा के चार अथवा पांच जिलों के लोगों से है। गंजम और विशाखापत्तनम जिलों के बाह्य क्षेत्रों में से कुछ के मामले में जनगणना के बारे में कुछ मतभेद हो सकता है परन्तु मैं यहां सदन को सूचित कर दूं कि उड़िया लोग कई क्षेत्रों में कई प्रशासनों के अंतर्गत हैं और व्यवहारिक रूप से प्रत्येक क्षेत्र में निहित स्वार्थों वाली एक बिचौलिया प्रशासक प्रजाति बना दी गई है और बंगाल सरकार ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जनगणना पर्यवेक्षक और गणनाकार इन लोगों को उड़िया भाषा-भाषी दर्ज करने से डरते हैं क्योंकि उन्हें डर है कि यदि वे इन्हें इस प्रकार दर्ज करेंगे तो वे क्षेत्र उड़ीसा में अंतरित कर दिए जायेंगे। यह बंगाल सरकार को लिखे गए उस पत्र में हैं और यह 1922 में भारत सरकार को प्राप्त हुआ था। वास्तव में जनगणना अधीक्षक को गणनाकारों और पर्यवेक्षकों की एक बैठक में उनमें से एक से यह टिप्पणी सुनने को मिली थी कि वे यह साक्ष्य प्राप्त होने पर भी कि वे लोग उड़िया भाषा-भाषी हैं, उन्हें इस रूप में दर्ज करने को तैयार नहीं हैं।

मैं वह वाक्यांश उद्धृत करता हूं:

(गणनाकारों और पर्यवेक्षकों की बैठक में)

"मैंने किसी को यह कहते हुए सुना कि यदि डान्टन में बड़ी संख्या में उड़िया भाषा-भाषी जनसंख्या होगी तो डान्टन को बालासोर में मिला दिए जाने की पक्की सम्भावना है।"

उन्होंने यह टिप्पणी सुनी थी। यह श्री ए०एम० चक्रवर्ती, सर्किल आफीसर के दिनांक 5 जुलाई, 1921 के पत्र में डान्टन और मोहनपुर के उड़िया-भाषा-भाषी लोगों के बारे में लिखा है।

दूसरा कारण यह बताया गया है कि कभी-कभी इच्छा आंदोलन के कारण भी लोग ऐसी इच्छाएं व्यक्त करते हैं। यह तथ्य भी हो सकता है कि जब आंदोलन प्रारंभ हुआ तो कुछ नेताओं ने किसी ऐसी बात के पक्ष में जनभावना जागृत की कि जिसके बारे में उन्हें पता था कि यह देश के हितों के लिए सहायक सिद्ध होगा। साधारण लोग आमतौर पर किसी नए आंदोलन के भविष्य के विषय में समझ नहीं पाते हैं और विश्व में प्रत्येक स्थान पर यह सच है कि जब जनता यह समझने में समर्थ नहीं होती कि वास्तविकता क्या है तो जनमत तैयार किया जाता है। परन्तु इससे पहले कि मैं इस आंदोलन का इतिहास बताऊं और इसकी व्याख्या करूं, मैं सदन को यह बताना चाहता हूं कि उड़ीसा क्या है, इतिहास में इसका क्या स्थान है और एक पृथक प्रांत बनने अथवा जैसाकि मैंने कहा है कि पृथक प्रशासन की मांग के पीछे इसके दावे क्या हैं? मैं इस सदन में अर्थात पिछले सदन में अपने एक मित्र से बात कर रहा था और उसने मुझसे पूछा कि मैं कहां का रहने

वाला हूं। मैंने कहा उड़ीसा से हूं। उसने मुझे ऐसे देखा जैसे समझ ही न पाया हो कि मैंने क्या कहा है। हां, यह सच है, फिर मैंने कहा बिहार और उड़ीसा का हूं तो उसने कहा "हां"—"हां" यह असम के नजदीक कहीं स्थित है। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने उन्हें कैसे समझाया और वह क्या समझे। परन्तु शायद यह एक तथ्य है कि हमारे लोग पिछले दो सौ वर्षों से वास्तविक रूप से अलग-थलग स्थिति में हैं और वे भारत के अन्य क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के बारे में कभी-कभी यह समझ ही नहीं पाते हैं कि वे कौन हैं और हम कौन हैं।

वर्तमान उड़ीसा की संस्कृति तीन प्राचीन प्रांतों की संस्कृति है, एक कलिंग दूसरा उत्कल और तीसरी उद्र। पुरातन कलिंग, द्रविड़ देश की सीमा पर आर्यों की पहली बस्ती थी। इतिहास में सातवें ई०पूर्व तक की बात स्पष्ट है। इसमें कलकत्ता अथवा तामलुक से गंजम के घुर दक्षिण तक का तटवर्ती क्षेत्र शामिल था। यह कलिंग क्षेत्र था जिस मगध के राजा अशो ने विजय पाई थी और इस विजय के पश्चात् वह एक संत बन गया था। कलिंग की संस्कृति अपने आप में एक महान संस्कृति थी और उड़ीसा की वर्तमान महान कला, जो कि आर्य कला से एकदम भिन्न कला है, पुरातन कलिंग कला के विकास का अवशेष है जिसका मूल रूप अब भी उड़ीसा के गुफाओं में बने मंदिरों में प्राप्त हो जायेगा। कलिंग की समुद्र यात्रा की आदतें नौवहन सुपरिचित हैं। विजय सिंह का नाम भारतीय इतिहास का एक जाना-पहचाना नाम है। उसके बारे में चार राज्य उड़ीसा, बंगाल, गुजरात और बर्मा यह दावा करते हैं कि वह वहां का रहने वाला था। परन्तु यह एक निश्चित तथ्य है कि उसकी पत्नी, जो उसके साथ सिलोन गई थी और जहां जाकर उन्होंने बस्ती स्थापित की और उस स्थान तक एक अपनी संस्कृति का प्रसार किया, कलिंग की ही रहने वाली थी। वह कलिंग के राजा की पुत्री थी और बर्मा तथा पूर्वी द्वीपसमूह में संस्कृति का प्रसार भी इतिहास का एक तथ्य है। वर्तमान पेगू का स्थानीय नाम ओसा था जो कि उड़ीसा का ही अपभ्रंस है और बर्मा में बनाये गए कुछ मंदिर उड़ीसा में उदयगिरी के गुहा मंदिरों की तरह ही बनाये गए हैं। कलिंग नौवहन पिछली शताब्दी के आठवें दशक तक भी लोकप्रिय था जो कि शीरा पर भारी निर्यात शुल्क लगाये जाने के परिणामस्वरूप बुरी तरह प्रभावित हुआ और वास्तव में उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया और देश में विदेशी नमक की पूर्ति के कारण उसका व्यापार भी समाप्त हो गया। यह पिछली शताब्दी के मध्य तक बालासोर और उड़ीसा के तटवर्ती शहरों में अभी भी विद्यमान था और उड़ीसा के कुछ पत्तनों पर छोटे-छोटे जहाजों और नौकाओं को टूटी-फूटी अवस्था में अभी भी देखा जा सकता है।

कलिंग बौद्ध संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। बौद्ध धर्म की स्थिति वहां अत्यधिक सुदृढ़ थी। जब इसका पुनः हिन्दूकरण हुआ तो यह संस्कृति उद्र देश से, जो कि वर्तमान मध्य

प्रांतों के दक्षिण-पूर्व भाग में फैला हुआ था, यहां आई और मैं यहां यह बताना चाहता हूं कि वर्तमान जगन्नाथ मन्दिर, जो कि समूचे भारत में एक धार्मिक स्मारक के रूप में स्थापित हैं, उद्र लोगों का उपहार है और वर्तमान उड़िया संस्कृति उस मन्दिर पर गर्व कर सकती है जहां जात-पात का कोई भेदभाव विद्यमान नहीं है। आपको भारत में अन्यत्र ऐसा कहीं नहीं मिलेगा। यह शुद्ध रूप से उड़िया संस्कृति है, उड़ीसा ने इसे जिन्दा रखा है। परन्तु उस उड़ीसा को भारतीय संघीय जीवनधारा में एक विशिष्ट तथ्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है।

उत्कल के बारे में मुझे अधिक नहीं कहना चाहिए। फिर भी, यह देखा जा सकता है कि प्राचीन उत्कल का प्रभाव सिंहभूम की ओर से आया था और इसने संस्कृति की इस समन्वित धारा में सभ्यता और प्रगति के कई स्थायी और उत्कृष्ट तत्व जोड़े थे। अतः यह एक तथ्य है कि हमने उड़ीसा में प्राचीन काल से ही अपनी एक विशिष्ट और पृथक संस्कृति विकसित की है, जिसकी पहचान नष्ट नहीं की जा सकती, यद्यपि इसे नष्ट करने के लिए लगभग गत दो सौ वर्षों से निरंतर गम्भीर प्रयास किये गये हैं।

इतिहास में उड़ीसा हमेशा एक पृथक प्रान्त रहा है। ऐसा नहीं है कि 20 वीं शताब्दी में हम पहली बार ब्रिटिश प्रशासन से यह अपील कर रहे हैं और इसके पृथक प्रान्त होने का दावा कर रहे हैं। महोदय, इतिहास दर्शाता है कि यह हमेशा से एक पृथक प्रांत था। इसका प्रबन्ध इसके अल्प राजस्व से ही किया जाता था फिर भी यह एक समृद्ध राज्य था। पड़ोसी प्रजातियों के साथ युद्ध के दौरान भी यह राज्य उन्नत कला और साहित्य विकसित कर सका था और धार्मिक कला तथा धार्मिक और सामाजिक महत्व की अन्य संस्थाओं पर अधिक धन खर्च कर सका था। उड़ीसा का क्षेत्र, जिसका अब, मिदनापुर से गंजम के धुर दक्षिण तक तथा समुद्र तट से लेकर सिंहभूम से भी आगे तक और पूर्वी केन्द्रीय प्रांतों तक फैले होने का दावा किया जाता है वह कोई नई खोज नहीं है। प्राचीन काल में इसका क्षेत्र इससे भी अधिक विस्तृत था और यह एक समृद्ध साम्राज्य था। बहमिनि, विजयनगरम् और बंगाल के समृद्धि के दिनों में भी हमारे राजाओं ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा की और अपनी समृद्ध नागरिक सेना से उन देशों पर विजय हासिल की। एक स्वतंत्र जाति और साम्राज्य के रूप में अपने पृथक अस्तित्व को 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक सुरक्षित रखा, जबकि भारत में खानदेश के अतिरिक्त, जो शायद उसी समय पराजित हो गया था, किसी भी प्रांत ने शाही मुगल सेना के विरुद्ध लड़ाई में अपनी स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं रखी। जब अकबर ने इस पर विजय हासिल की तो उसने स्थिति को समझा। वह एक मात्र विजेता ही नहीं था बल्कि एक राजनेता भी था। वह उड़िया लोगों के पृथक अस्तित्व की आवश्यकता को समझ सका था और उसने इसे एक पृथक प्रांत बनाया। मुगलों के सम्पूर्ण शासन काल में यह पृथक राज्य रहा और मैं सदन को

यह अवश्य सूचित करुंगा कि हमारे मुसलमान एक सम्मानीय वर्ग के लोग हैं। इसलिए आप हिन्दू और मुसलमानों के बीच शायद ही कोई तनाव पायेंगे तथा न ही इस भूमि का शांत वातावरण किसी प्रकार के साम्प्रदायिक दंगों से प्रभावित हुआ है।

हमें बार-बार जीता गया और हमारे साथ फुटबाल की तरह व्यवहार किया गया। शायद ब्रिटिश शासन के दौरान ही इसमें व्यापक परिवर्तन हुआ। प्लासी युद्ध के कुछ समय पहले इसे बंगाल का एक हिस्सा बना दिया गया था। इससे भी पहले इसे नागपुर में मिला दिया गया था। मैं नहीं जानता, संभवतः उड़ीसा को कलकत्ता के व्यापारियों, जो मराठा के छापों से भयभीत थे, के दबाव में बंगाल के गवर्नर द्वारा मराठों को बंगाल के उपहार के रूप में दिया गया था। फिर इसे केन्द्रीय प्रांतों का एक हिस्सा बनाया गया। एक प्रसिद्ध इतिहासकार, सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हन्टर ने अपने सांख्यिकीय आकलन में यह स्वीकार किया है कि ब्रिटिश सरकार हमारी प्राचीन भूमि पर आयदा और गरीबी के लिए किसी प्रकार जिम्मेदार थी। उड़ीसा का मुख्यालय कलकत्ता में स्थापित किया गया था और उड़िया लोगों को बिना नोटिस दिये कलकत्ता में हमारी जमीदारी को बहुत ही कम दामों पर बेच दिया गया था और इनमें से हमारे कई जमींदार अन्यत्रवासी जमींदारों के रूप में कलकत्ता में रह रहे हैं। यह स्पष्टतः ब्रिटिश सरकार की ही करतूत है।

महोदय, हमारा ऐसा ही भाग्य रहा है। उसी समय से हमें एक वस्तु की तरह बना दिया गया है। जब एक बड़े प्रांत की, सुरक्षा और खुशहाली के लिए आवश्यकता है, तब हमें आंशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से एक फुटबाल की तरह फेंक दिया गया है। ऐसी अंतिम घृणित कार्यवाही तब की गई थी जब हमें बिहार के साथ जोड़ा गया था। शायद सरकार को याद होगा कि हमें बताया गया था कि हमें बिहार को समुद्र-तट उपलब्ध कराना है। यदि समुद्र-तट उपलब्ध कराने का अर्थ यह है कि हमें प्राचीन कलिंग के पुराने और पवित्र तट की सुहानी तंरगों को भेंट देकर बिहार के चरणों को धोना था तो कोई भी यह आसानी से समझ सकता था। क्या वहां किसी पत्तन पर कार्य चल रहा था? क्या उड़ीसा के समुद्र तट का विकास किया गया था? क्या उड़ीसा को बिहार का समुद्र तट कहने के लिए कभी भी कुछ किया गया था? यह बिहार को सम्भरक भूमि के एक भाग की सप्लाई हेतु मात्र परीक्षण था, ताकि यह अपने आप को एक पृथक प्रांत के रूप में सम्पोषित कर सकें।

महोदय, हम असम अथवा केन्द्रीय प्रांतों की तरह एक पृथक राज्य की इच्छा रखते हैं। असम की वास्तव में इतनी ही अथवा कम जनसंख्या और लगभग इतनी राजस्व राशि के होते हुए भी पृथक राज्य बनाया गया है। वहां न तो कोई उच्च न्यायालय है और न ही वहां कोई विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है, परन्तु इसे एक पृथक राज्य के रूप में मान्यता दी गई है और यह अपेक्षा की गई है कि लोग अपनी नियति का फैसला खुद

कर सकें और उस पर अधिकार कर सकें, जबकि हमें हमेशा खदेड़ा जा रहा है। यह स्वाभाविक है कि हम एक पृथक राज्य चाहेंगे, जैसा कि हम इतिहास के पूरे काल से ही चाहते रहे हैं। परन्तु लगभग इन दो सौ वर्षों में साम्राज्यवादी सरकार की त्रुटियों के कारण हमें एक स्थान से दूसरे स्थान पर फुटबाल की तरह फेंका गया है और हमें विभाजित करके अलग-अलग टुकड़ों में इधर-उधर बिखेर दिया गया है। अतः यह स्वाभाविक है कि हमारे आर्थिक जीवन को जोखिम में डालकर भी हम एक पृथक राज्य बनाना पसन्द करेंगे। परन्तु शायद यहां पर मैं बिहार से अपने मित्रों के संशोधनों का उल्लेख करना चाहूंगा।

वे यह बताने के लिए हमेशा एक संशोधन प्रस्तुत करते रहें हैं कि हमें बिहार और उड़ीसा, वर्तमान उड़ीसा डिवीजन में नहीं, बल्कि इससे भी बड़े क्षेत्र वाले उड़ीसा के अधीन रहना चाहिए। जब वर्ष 1921 के शुरू में बिहार तथा उड़ीसा की परिषद में सुधारों में एक संकल्प का प्रस्ताव किया गया था, तो ऐसा संशोधन पारित नहीं हो पाया था और जैसा संकल्प मैंने प्रस्तावित किया है वह सर्वसम्मति से पारित हो गया था। मैं नहीं जानता हूं कि "बिहार और उड़ीसा प्रशासन के अधीन" जैसे शब्दों का प्रयोग करने में क्या तुक है। मैंने इस स्पष्ट आशय के साथ एक प्रशासन के अधीन शब्द कहे थे कि मैं बिहार और उड़ीसा अथवा एक पृथक प्रांत, जिसे कि हम बाद में अवश्य चाहते हैं, के अधीन रहने के लिए अपने आपको वचनबद्ध नहीं कर सकता। यहां मुझे किसी अन्य प्रांत के अधीन रहने के लाभों एवं हानियों के बारे में एक शब्द शामिल करने की अनुमति दी जाये। यदि हमें धारा के प्रवाह की तरह किसी अन्य प्रांत के साथ जोड़ने का प्रयास जारी रहता है तो सर्वप्रथम यही बेहतर होगा कि हमें केन्द्रीय प्रांतों के साथ जोड़ दिया जाये क्योंकि वहां हमारी कुछ पहचान तो होगी। हमारी जनसंख्या भी लगभग इन प्रांतों के बराबर है और कटक से सम्बलपुर तक रेल संचार, जो मेरी जानकारी के अनुसार इस समय विचाराधीन है, को बंगाल नागपुर रेलवे पर कुछ स्टेशनों के जरिये नागपुर तक बढ़ाया जाये जबकि विशाखापत्तनम बन्दरगाह रेलवे भी लाभदायक सिद्ध होगी। अथवा यदि हम दूसरे प्रांत में शामिल किये जाते हैं तो बंगाल और इसका उच्चन्यायालय और विश्वविद्यालय जो कि उसकी न केवल धरोहर बन चुके हैं, बल्कि कुछ सीमा तक प्रांत के प्रभाव और स्वतंत्रता की छाप छोड़ते हैं, हमारे घरों से नजदीक हो जाएंगे और उड़ीसा के किसी भी हिस्से से वहां आसानी से, जैसेकि रेल से केवल 12 घण्टे में पहुंचा जा सकेगा। हमें बिहार में शामिल करके इस प्रांत से बाहर करने में उसे तो कोई अच्छाई नहीं दिखती। पटना सम्भवतः अन्य किसी भी केन्द्र की तुलना में अधिक दूरी पर है और इतिहास साक्षी है कि हम कभी भी बिहार के अंतर्गत नहीं रहे। पहले एक बार हम बंगाल में शामिल थे, फिर केन्द्रीय प्रांतों में और हमें पुनः बंगाल में जोड़ दिया गया। 1911 में बंगाल का विभाजन रद्द करने और बिहार को अधिक भूक्षेत्र देने के उद्देश्य से

हमें बिहार में शामिल किया गया। चूंकि कभी-कभी सरकार भाग्य विधाता बनकर हमारी किस्मत का फैसला करती है और यदि सरकार उचित समझे कि हम बिहार में रहें तो हमें इसे स्वीकार करना पड़ेगा, परन्तु हम चाहेंगे कि सभी उड़िया भाषी लोग बिहार में शामिल किये जाऐं। हमारी बस यही इच्छा है। वर्तमान प्रशासन की व्यवस्था के अन्तर्गत हम लुप्त प्रायः जाति हैं और इस हालत में हम स्वयं प्रांतों का चुनाव करने वाले कौन होते हैं, हम तो बस यही अपील और आग्रह कर सकते हैं कि हमें एक प्रशासन् में रखा जाए। इस समय हमें जिस प्रशासन में शामिल करेंगे, हमें उसे स्वीकार करना पड़ेगा, इसके सिवा कोई चारा नहीं है। तब हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और जब हम एक संगठित जाति के रूप में उभरेंगे तभी अपना भाग्य पलट सकते हैं। मेरा मतलब है कि सरकार हमें पृथक प्रांत दे। यही हमारी आशा और उद्देश्य है और इसके बिना हमें चैन नहीं मिल सकता है। और जहां तक क्षेत्रों के पुनर्वितरण का संबंध है, सरकार की ओर से चाहे कितनी ही आपत्तियां क्यों न हों, यदि सरकार हमारे सभी क्षेत्रों अर्थात कई पीढियों बल्कि शताब्दियों से हत्याओं में सक्रिय एजेंसियों के बावजूद बचे लोगों वाले क्षेत्रों को एक साथ मिला देती है तो इस युग में हत्याओं का सिलसिला जारी नहीं रहेगा। यह जारी नहीं रह सकता है असंतोष तो कभी दूर नहीं होगा, छोटे से छोटे दूरस्थ हिस्सों में भी यह पनप जाएगा। आप कह सकते हैं कि बंगाल के कुछ हिस्सों में इसकी सहमति नहीं है कि केन्द्रीय प्रांतीय सरकार इस धारणा को पंसद नहीं करती अथवा कि सिंहभूम के एक हिस्से का उड़िया संस्कृति से मेल नहीं हो सकता है यद्यपि इस क्षेत्र में यह संस्कृति दो या तीन पीढ़ियों से चली आ रही है आपको यह जानकर बड़ा दुख होगा कि असंतोष जारी है। वर्तमान राजनैतिक जगत में असंतोष व्याप्त है और मैं मानता हूं कि असंतोष करने वाले लोग दूरस्थ क्षेत्रों में उभरेंगे। वे आपको फिर परेशान करेंगे और यह मसला तब तक अंतिम रूप से हल नहीं होगा, जब तक कि हमारे लोग एक ही प्रशासन; यदि संभव हुआ तो यथाशीघ्र एक पृथक और विशिष्ट प्रांतीय प्रशासन के अंतर्गत नहीं रखे जाते।

उप-प्रांत के नाम पर कुछ सुझाव रखे गए हैं। न तो मुझे और न ही मेरे मित्र माननीय होम मेम्बर को यह पता है कि इसका आशय क्या है। एक प्रांत को उप-प्रांत का नाम देना अजीब लगता है। मेरे विचार से यह ऐसा प्रांत होगा जिसमें उच्च न्यायालय और विश्वविद्यालय शामिल नहीं होंगे और जैसा कि हमें बताया गया है कि हम इन्हें स्वतंत्र रूप से नहीं चला पाएंगे, हालांकि मेरी राय में हमारी भूमि में व्याप्त भुखमरी और आर्थिक परेशानियों के बावजूद हम अपना एक पृथक विश्वविद्यालय और उच्च न्यायालय रखने का यथासंभव प्रयास करेंगे परन्तु हमारे भाग्य विधाताओं के लिए ऐसा करना संभव न हो, तो इसे असम जैसा प्रांत बना सकते हैं, जहां एक विश्वविद्यालय अथवा उच्च न्यायालय न हो। परन्तु उप-प्रांत का क्या अर्थ है? यह तो अपमानजनक शब्द है और हमारे लोगों को आशंका है कि अपने प्रांत को उप-प्रांत कहने से हम फिर नुकसान में रहेंगे।

मैं इस तरह के उपसर्ग उप-प्रांत के अतंर्गत बने प्रशासन, जो यह परिलक्षित करे कि हमें ऐसी ही असुविधाओं युक्त दूसरे बड़े प्रांत के साथ जोड़ दिया गया है जिनके अंतर्गत हमें फिलहाल रहना पड़ रहा है, की तुलना में दूसरे प्रांत के प्रशासन में रहना पसंद करुंगा। महोदय, मैं इन शब्दों के साथ यह प्रस्ताव रखता हूं।

*** *** ***

*** *** ***

महोदय, हमारी आंकाक्षाओं का सम्मान करने के लिये मैं सर्वप्रथम माननीय होम मेम्बर का आभार प्रकट करता हूं, हालांकि इसके पीछे कई आधार हैं और मेरी राय में इनमें से कई व्यावहारिक रूप से बाहरी हैं। उनका कहना है कि यह एक स्थानीय समस्या है। जी हां, स्थानीय। परन्तु मेरी राय में इसे सरकार ने ही स्थानीय बना दिया है। उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रश्न स्थानीय नहीं था, न ही बंगाल का विभाजन। पिछले 150 वर्षों से अधिक समय से हमें टुकड़ों में विभाजित कर दिया गया है और कई प्रांतों के रूप में स्थापित कर दिया गया है और यह ब्रिटिश सरकार की ही कार्यवाही है और हमारा सवाल जब सभा में उठाया जाता है तो इसे स्थानीय करार दिया जाता है ताकि सदस्यों को हतोत्साहित किया जा सके।

मुझे खेद है कि हालांकि मैंने असम से तुलना की बात उठाई है, मेरे माननीय मित्र होम मेम्बर ने मुझे यह नहीं बताया कि क्या वास्तविक रूप से तुलना की जा सकती है और हमारा प्रदेश असम जैसा प्रांत बनाया जा सकता है। उन्होंने स्थानीय परिषदों का जिक्र किया है और कहते हैं कि यह प्रश्न स्थानीय परिषदों में उठाया जाना चाहिए और इसका निर्णय पहले वहां लिया जाना चाहिए। लोक मत की कसौटी स्थानीय परिषदें होनी चाहिए क्योंकि इनमें दूरस्थ क्षेत्रों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। यदि उक्त उद्देश्य मान भी लिया जाए तो इसका कोई महत्व नहीं है। वहां इनकी संख्या बहुत ही कम है। यदि वह भारत सरकार अधिनियम की धारा 15 के अन्तर्गत संयुक्त संसदीय समिति के टिप्पण को देखें, तो मुझे विश्वास है कि वह इस बात से संतुष्ट हो जायेंगे कि यह प्रश्न वर्ष 1921 में उठाया गया था; यह बिहार परिषद में उठाया गया था और इसका न केवल उड़िया क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों ने सर्व सम्मति से समर्थन किया था बल्कि इसका सभा ने भी सर्वसम्मति से समर्थन किया था, और लगभग उसी समय यह श्री शशि भूषण रथ द्वारा मद्रास की स्थानीय परिषद में रखा गया था, वहां उड़िया से गंजम क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले केवल दो ही सदस्य थे और दोनों ही सदस्यों ने अपने विचार रखे तथा इस संकल्प का सर्मथन किया, हालांकि यह संकल्प इस तथ्य को ध्यान में रखकर

अन्ततः वापस ले लिया गया कि सरकार ने उक्त विषय की जांच करने और इसका समाधान करने का आश्वासन दे दिया था। जहां तक मध्य प्रांतों और मिदनापुर के अन्य छोटे क्षेत्रों का संबंध है, स्थानीय परिषदों में इस प्रश्न को बहुत व्यावहारिक रूप नहीं दिया, वहां की परिषदों में उक्त क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों की संख्या आधी अथवा इससे भी कम थी।

इसके अतिरिक्त, यदि वह इस तकनीकी कठिनाई में पड़ गए हैं, तो मुझे विश्वास है कि वह संतुष्ट हैं। स्थानीय परिषदों ने—मेरा मतलब उन लोगों ने जो स्थानीय परिषदों में क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, अत्यन्त जोरदार शब्दों में अपने विचार प्रकट किए हैं। वह कहते हैं कि क्योंकि मैंने कहा है कि सभी उड़िया भाषी क्षेत्रों को एक प्रशासन के अन्तर्गत रखे जाने का यह कदम पूरे क्षेत्र को एक अलग सरकार के अन्तर्गत लाने की शुरुआत है। वर्तमान उड़ीसा में आने वाले गंजम का प्रश्न शायद इतना अधिक महत्व नहीं रखता। हमें कुछ विचित्र बातें सुनने को मिल रहीं हैं। विघटन के कारण हमें नुकसान हो रहा है और जैसाकि मैंने पहले कहा है, हम मरणासन्न स्थिति के दौर से गुजर रहे हैं। टुकड़े-टुकड़े करके हमें समाप्त किया जा रहा है। हम एक दूसरे की सहायता करने के लिए मिलजुल कर कोई प्रयास नहीं कर सकते। हमारी संस्कृति, जो भाषा पर आधारित है, अर्थात प्राचीन संस्कृति वास्तव में विलुप्त होती जा रही है और हम चाहते हैं कि हमारे सभी लोग एकजुट हो जाएं ताकि हम संयुक्त प्रयास कर सकें और अपनी संस्कृति, अपने क्षेत्र को विकसित कर सकें, और स्वयं को एक अलग प्रांत के रूप में विकसित करने में प्रशासन की सहायता कर सकें। यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो हम इस सरकार से आने वाले समय में हमेशा, अर्थात जीवनपर्यन्त अनुरोध करते रहेंगे और शायद तब भी इसका कोई परिणाम न निकले। यदि टुकड़ों में बंटे हुए सभी प्रांत मिलकर केन्द्रीय सरकार अथवा प्रांतीय सरकारों तक अपनी बात पहुंचाने के लिये संयुक्त आवाज नहीं उठाएंगे, तो उनका स्वतः पतन हो जाएगा और शायद वे स्वयं को प्रतिकूल वातावरण में लुप्त कर देंगे जोकि किसी विकसित संस्कृति में पलकर बड़े हुए व्यक्ति के लिए अत्यन्त कठिन है।

इसके अतिरिक्त जहां तक किसी अलग प्रांत का प्रश्न है, उसके प्रशासनिक महत्व के बारे में माननीय होम मेम्बर को हमेशा ध्यान रहता है और जहां तक प्रशासनिक सुविधा का सम्बन्ध है, श्री गया प्रसाद सिंह और श्री बी० दास द्वारा इस बारे में बहुत कुछ उदाहरण दिए गए हैं। प्रांतों में, विशेष रूप से मद्रास प्रेसीडेंसी में, किसी सरकारी अधिकारी को मद्रास से गंजम स्थानांतरित करना बहुत कठिन है.....

महोदय, मुझे माननीय सदस्य की यह बात सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि प्रश्न के प्रशासनिक तथा वित्तीय पहलुओं की आलोचना द्वारा मैंने उनकी सहानुभूति खो दी है। मुझे नहीं पता कि उनकी सहानुभूति किसी व्यक्ति द्वारा की गई आलोचना पर टिकी हुई

है। यह इतनी फिसलने वाली नहीं होनी चाहिए जो इतनी आसानी से और इतने तुच्छ बहानों से खिसक जाए। यह एक ऐसी समस्या हुई है जो संभवतः प्रशासनिक दृष्टिकोण से उत्पन्न हुई है। उन्हें, जो कि सरकार का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, इस पर अत्यन्त निष्पक्ष रूप से और एक भिन्न पहलू से विचार करना चाहिए और उन्हें जनता की भलाई के बारे में सोचना चाहिए और देखना चाहिए कि इस प्रकार की महत्वपूर्ण समस्या, जिस पर चर्चा की जा रही है; में जनता की कितनी भलाई निहित है। मेरी टिप्पणियां उन्हें अच्छी लगी अथवा नहीं, यह ऐसा मामला नहीं है कि पूरी मानवजाति के हितों से उनकी सहानुभूति समाप्त हो जाए। तथापि, मैं उनकी खुशी के लिए इस मामले के वित्तीय तथा प्रशासनिक पहलुओं पर कोई और टिप्पणी करना नहीं चाहता। लेकिन मुझे एक बात अवश्य कहनी पड़ेगी। उड़ीसा का प्रतिनिधि होने के नाते, प्रायः इस प्रकार की टिप्पणियां सुनकर मुझे दुखः होता है कि हम अकाल पीड़ित, बाढ़ पीड़ित और निर्धन लोग हैं। हां, हम निर्धन लोग हो सकते हैं, लेकिन मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मेरे मित्र माननीय होम मेम्बर इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि काफी हद तक इसके लिए वह सरकार जिम्मेदार है, यद्यपि पूरी तरह प्रशासन नहीं, जो हम पर शासन कर रही है। मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे माननीय मित्र ने इस विषय पर अपना तर्क प्रस्तुत करने के लिए मेरे प्रांत के सरकारी प्रतिनिधि को क्यों नहीं कहा। इसके विपरीत, मेरे मित्र की तरह वहां सरकार के प्रतिनिधि श्री श्याम नारायण सिंह शायद ही कभी उड़ीसा गए हों और यदि वे यहां कुछ कहते हैं वह अखबारों से पढ़कर या शायद पुरी की तीर्थयात्रा पर कभी गए हों तो उसके आधार पर कहेंगे। यदि मेरे माननीय मित्र, सर अलेग्जेंडर मुडिमान भविष्य में मेरे प्रांत में जाएं तो मुझे माननीय होम मेम्बर को वहां देखकर खुशी होगी। यदि वह देश के गांवों में जाएं तो देखेंगे कि उड़ीसा के प्राचीन राजाओं द्वारा सिंचाई व्यवस्था और गांव की योजना किस प्रकार तैयार की गई थी और सिंचाई के प्रयोजन के लिए उक्त नहरों और बांधों का किस प्रकार निर्माण किया गया था और किस प्रकार भूमि का विकास किया गया और अब किस प्रकार इनकी उपेक्षा की गई है। यह सच है कि दो अथवा तीन वर्ष पहले बिहार सरकार कुछ जांच करना चाहती थी और इसके लिए एक समिति भी गठित की गई थी, और यह भी सच है कि इस समिति ने कमिश्नर के बंगले में बैठकर एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें कहा गया कि सभी बांधों को ध्वस्त कर दिया जाए, हालांकि इसके लिए न तो किसी व्यक्ति का साक्ष्य लिया गया है और न किन्हीं साक्षियों से सवाल जवाब किए गए; इससे पता लगता है कि हमारी किस प्रकार देखभाल की जा रही है। सभा के माननीय सदस्य अब यह जान सकते हैं कि अकाल और बाढ़ की स्थिति लोगों की गलती के कारण उत्पन्न नहीं होती है, बल्कि ऐसी स्थिति काफी हद तक सरकार की गलती और जिस सरकार के अन्तर्गत 150 वर्षों अथवा इससे अधिक समय से हम जो परिश्रम करते आ रहे हैं उसकी देखरेख में कमी के कारण उत्पन्न होती है। यदि हम

इतिहास पर दृष्टि डालते हैं, तो देखते हैं कि वास्तव में प्राचीन काल में अकाल नहीं पड़ता था, परन्तु वर्तमान सरकार के अन्तर्गत यह इतनी जल्दी-जल्दी पड़ने लगा है। मैं, हमारी तरह निर्धन और उत्पीड़ित लोगों के लिए अपने माननीय मित्र की सहानुभूति खोना नहीं चाहता, हम इस प्रकार के मामले में किसी भी व्यक्ति की सहानुभूति खोना नहीं चाहते। हमारे राजनैतिक सिद्धांत चाहे जो भी हों, इस मामले में हमारा कोई सिद्धांत नहीं है। हमारी इतनी अधिक उपेक्षा की जाती है, हम इतने अधिक अकेले पड़ गए हैं, हमारा इतना अधिक बहिष्कार किया गया है कि हम कुछ कह ही नहीं सकते। लेकिन मुझे यह अवश्य स्पष्ट कर देना चाहिए कि मुझे आशा थी कि माननीय सदस्य इतने वर्षों के आन्दोलन के पश्चात हमारी स्थिति समझेंगे और इस सभा में हमें कुछ ऐसा आश्वासन देंगे कि हमारी गलतियों का सुधार किया जा रहा है।

अब, मेरे लिए केवल एक बात बची है कि मेरे जिन माननीय मित्रों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं मैं उनका संदेह दूर कर दूं। मैं यहां अपने मित्रों को पुनः स्पष्ट रूप से बता दूं कि एक अलग प्रांत के बिना हम संतुष्ट नहीं हो सकते और में अपने मित्र, श्री गया प्रसाद सिंह के संशोधन के बारे में स्वयं कोई वचन देना कभी नहीं चाहूंगा। मेरे मित्र, मौलवी मुहम्मद याकूब ने भी एक प्रश्न उठाया है और कहा है कि वह समझते हैं कि बिहार के मुस्लिम मित्र इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं, लेकिन जहां तक मुझे पता है बिहार के मुसलमानों का बहुमत इसके विरोध में नहीं है।

मैं आज इस सभा में अत्यन्त स्पष्ट और जोरदार शब्दों में कहता हूं कि एक अलग प्रांत के बिना हम बिल्कुल संतुष्ट नहीं हो सकते। यदि सरकार हमें किसी प्रांत से जोड़ना चाहती है, तो हमारा आन्दोलन तब तक जारी रहेगा जब तक कि हम अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करने योग्य नहीं हो जाते। हमारी इच्छा यही है और प्रत्येक व्यक्ति की यही इच्छा होनी चाहिए। इस पर मेरे मित्र, नवाब सर साहिबजादा अब्दुल कयूम ने भाषा के संबंध में यह प्रश्न उठाया है कि भारत में अनेक भाषाएं हैं, यदि वह चाहें तो अंग्रेजी भाषा को अपनाने का प्रयास कर सकते हैं क्योंकि यह राष्ट्र की आम बोलचाल की भाषा है। लेकिन यहां इस प्रश्न का कोई औचित्य नहीं है। मैं यहां केवल भाषा की बात नहीं कर रहा हूं बल्कि संस्कृति से जुड़ी भाषा की बात कर रहा हूं। यहां अनेक भाषाएं हैं जो संस्कृति पर आधारित नहीं हैं। यह एक ऐसी भाषा है जो हजारों वर्षों से एक विशिष्ट संस्कृति से जुड़ी चली आ रही है, जो भारत संघ राष्ट्रीयता को कुछ दे सकती है और यदि इस संस्कृति को, जो भाषा के माध्यम से ही चल रही है, विलुप्त हो जाने दिया जाए अथवा जिसको विघटन के द्वारा नष्ट होने दिया जाए और जिसकी उपेक्षा होने दी जाए, तो में समझूंगा और मेरे प्रत्येक मित्र को यह महसूस करना चाहिए कि भारत की राष्ट्रीयता का एक विशिष्ट तत्व समाप्त हो जाएगा। भाषाई प्रांत इसी सिद्धांत पर आधारित होंगे। भारत

में लगभग 671 भाषाएं हैं। भारत को 671 प्रांतों में विभाजित नहीं किया जा सकता। लेकिन संस्कृति और एक सामान्य इतिहास तथा परम्परा से जुड़ी भाषा को मान्यता दी जानी चाहिए, और भविष्य में हमारे प्रांतों के गठन का सिद्धांत इसी पर आधारित होना चाहिए। इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं अपना संकल्प सभा के समर्थन के लिए प्रस्तुत करता हूं।

3
भारतीय वित्त विधेयक (नमक कर)*

क्या मैं व्यवस्था का एक प्रश्न उठा सकता हूं? मैं यह मान लेता हूं कि आप इस चरण पर, मेरे माननीय मित्र श्री आचार्य को अपना संशोधन प्रस्तुत करने की अनुमति देंगे। यदि हां, तो मैं अपना व्यवस्था का प्रश्न रखता हूं। यह संशोधन शुल्क को 1-4-0 रुपए से कम करके 4 आने करने के लिए है। नमक कर से संबंधित भारतीय वित्त विधयक के खंड 2 के बारे में मेरा भी एक संशोधन है जो सूची में संख्या 8 पर है। यह नमक-शुल्क को पूरी तरह माफ करने के बारे में है।

मेरी समझ में उनका संशोधन ब्रिटिश राज या ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल से लगे नमक-शुल्क को समाप्त करने के बारे में है।*

मेरा संशोधन है:—

"विधेयक के खण्ड 2 के अन्त में निम्न जोड़ा जाए:

"और उक्त उपबंधों का, जहां तक वे गवर्नर जनरल इन कौंसिल को इस प्रकार लगाये गये शुल्क को माफ करने का अधिकार प्रदान करते हैं, अर्थ होगा — मानो 1 अप्रैल, 1929 से उक्त कौंसिल ने एक रुपया चार आना तक शुल्क माफ कर दिया है और यह छूट इस धारा के अन्तर्गत बनाये गये नियम के अनुसार लगने वाली शुल्क में से दी गई मानी जायेगी।"

तत्पश्चात् संशोधित रूप में पूरा खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"भारतीय नमक अधिनियम 1882 के खण्ड 7 के उपबंधों का, जहां तक वे गवर्नर जनरल इन कौंसिल को, इस खण्ड के अंतर्गत बनाये गये नियम के अनुसार, ब्रिटिश इंडिया के किसी भाग में बनाये गये अथवा बर्मा या अदन के अतिरिक्त किसी अन्य देश से यहां आयात किये गये नमक पर शुल्क लगाने का अधिकार प्रदान करते हैं, अर्थ होगा—मानो 1 अप्रैल, 1929 से उक्त कौंसिल ने ब्रिटिश इंडिया के किसी भाग में बनाये गये या आयात किये गये नमक पर 1 रुपया चार आना प्रति मन, जो 82 2/7 पौंड का होगा, की दर से

*केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद, 21 मार्च, 1929, पृष्ठ 2293—2310.

ऐसा शुल्क लगाया गया है और ऐसा शुल्क उक्त अधिनियम के प्रयोजनार्थ इस धारा के अंतर्गत बने नियम के अनुसार लगाया हुआ माना जायेगा और उक्त उपबंधों का, जहां तक वे गवर्नर जनरल इन कौंसिल को इस प्रकार लगाये गये शुल्क को माफ करने का अधिकार प्रदान करते हैं, अर्थ होगा—मानो 1 अप्रैल, 1929 से उक्त कौंसिल ने एक रुपया चार आना तक शुल्क माफ कर दिया है और यह छूट इस धारा के अंतर्गत बनाये गये नियम के अनुसार लगने वाली शुल्क में से दी गई मानी जायेगी।"

नमक अधिनियम, 1882 की धारा 7 में प्रावधान है:

(क) गवर्नर जनरल इन कौंसिल इस अधिनियम के अनुरूप नियम द्वारा समय-समय पर ब्रिटिश भारत में किसी भी भाग में निर्मित नमक या भूमि मार्ग से आयातित नमक पर 82 2/7 पौंड के प्रति मन पर शुल्क, जो तीन रुपए से अधिक न हो, लगा सकती है,

(ख) मेरा संशोधन इसी के संदर्भ में है। इस प्रकार लगाई गई किसी भी शुल्क को कम कर सकता है या माफ कर सकता है और इस प्रकार या कम की गई या माफ की गई शुल्क को पुनः लगा सकता है।"

समय-समय पर इस विशेष उपखंड के अंतर्गत अधिसूचना द्वारा शुल्क माफ किये गये हैं। 1893 में, पंजाब खानों में निर्मित नमक में चमकीले मिट्टी के बर्तनों के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले नमक पर शुल्क माफ कर दिया गया था। त्रावनकोर और अन्य स्थानों को भेजे गए मद्रासी नमक के मामले में भी ऐसा ही किया गया था। धारा और उपखंड के नीचे दिये गये पाद-टिप्पण में ऐसे अन्य उदाहरण दिए गए हैं। मगर इस संशोधन को पारित कर दिया जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि नमक पर तो शुल्क लगाया जाएगा किन्तु भारत में निर्मित नमक पर 1-4-0 रुपए का शुल्क पूरा का पूरा माफ हो जायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि विदेशी नमक पर उतनी ही दर से सीमा शुल्क लगाया जाएगा जितना कि भारत में निर्मित नमक पर उत्पाद शुल्क लगेगा मगर बंगाल में निर्मित नमक पर 1-4-0 रुपए की दर से उत्पाद शुल्क लगाया जाता है, तो इसका अर्थ है कि लिवरपूल या जर्मनी से बंगाल में आयातित नमक पर भी 1-4-0 रुपए की दर से आयात-शुल्क लगाया जाएगा। अगर हम कहते हैं कि देशी नमक पर शुल्क नहीं लगना चाहिए तो इसका अर्थ है कि आयात शुल्क भी स्वतः समाप्त हो जाएगा। अगर यहां उत्पाद-शुल्क नहीं लगाया जायेगा, तो आयातित नमक पर शुल्क लगाने के लिए कोई मानदंड नहीं रहेगा। अतः मेरे संशोधन के अनुसार, तकनीकी तौर पर उत्पादन शुल्क ज्यों का त्यों रहेगा। उत्पादन शुल्क माफ कर दिया जाएगा, हालांकि तकनीकी तौर पर कानून में यह आयातित नमक पर टेरिफ शुल्क लगाने के लिए विद्यमान रहेगा। मेरे संशोधन का

यही उद्देश्य है। .... इस वित्त विधेयक में नमक कर एक बहुत ही आपत्तिजनक मुद्दा है, जहां तक इसके आर्थिक पक्ष का संबंध है। शायद, उन्हें इसकी जानकारी नहीं है। वह इस सदन में नए आए हैं। जैसा की मेरे मित्र ने कहा कि वर्ष-दर-वर्ष नमक कर लगा दिया जाता है। मैं आशा करता हूं कि मेरे संशोधन को सभा में अन्य सदस्यों का भी समर्थन मिलेगा। मुझे आशा है कि हम इसे पारित करने में समर्थ होंगे। किन्तु इसके लिए सभी को अपनी राजनैतिक विचारधारा से ऊपर उठकर जन-प्रतिनिधियों के रूप में थोड़ा प्रयास करना होगा।

सरकारी दृष्टि से यह व्यक्ति कर है, प्रति व्यक्ति कर है, या ऐसा ही कुछ है। सरकार की ओर से यह तर्क दिया जा रहा है कि कर में वृद्धि किये जाने से नमक की खपत में कमी आती है। लेकिन खपत तो ज्यों की त्यों रहती है। फिर, यह व्यक्ति कर या प्रति व्यक्ति कर के अलावा कुछ और नहीं है? प्रति व्यक्ति कर का महत्व और सिद्धान्त क्या है? इससे मानव की दासता के युग की याद आती है कि किस सरकार ने व्यक्ति कर लगाया था? यह कोई संगठित या सभ्य सरकार नहीं थी। व्यक्ति कर तभी लगाया जा सकता है, जब सरकार लोगों की अज्ञानता के कारण उनसे धन एकत्र करना चाहती है। कोई भी सभ्य सरकार व्यक्ति कर लगाने की बात कभी सोच ही नहीं सकती। सरकार इस नमक कर को अप्रत्यक्ष कर कहती है जबकि वास्तव में यह व्यक्ति कर है। मेरा मतलब अप्रत्यक्ष कर के सिद्धांत से था। मेरे विचार से यह प्रत्यक्ष व्यक्ति कर है और यह असभ्यता की निशानी है।

यह कर खाद्य वस्तुओं पर लगाया गया है। इस कर से अमीर लोग प्रभावित नहीं होंगे। हालांकि मैं यह नहीं कहता कि अमीर लोगों को इस कर से कोई लेना-देना नहीं है। यह कर है और गरीब लोगों के समान ही अमीर भी इसे अदा करेंगे। वर्तमान साम्राज्यवाद की खासियत यह है कि वह गरीब लोगों का शोषण करना चाहती है और उन्हें सताना चाहती है। साम्राज्यवाद हमेशा से ही विश्व में सम्पदा का, जहां उसकी सुरक्षा करने वाले कमजोर हैं, शोषण करता आया है। गरीब का शोषण किया जाता है अन्यथा यह कर क्या है? इससे साम्राज्यवादी शोषण नीति का स्पष्ट पता चलता है। यह मानव रक्त पर कर है इस कर के रूप में राज्य के खजाने के लिए गरीबों के खून से रकम वसूली जा रही है। मैं सदन में एक कैमिस्ट के रूप में पेश नहीं होना चाहता; लेकिन मैं कहना चाहता हूं कि मानव रक्त में शायद 90 प्रतिशत नमक है और जब आप नमक पर कर लगाते हैं; तब आप गरीब लोगों के खून पर कर लगाते हैं। गरीबी लंबे समय से एक अभिशाप है और इसलिए इसे सजा दी जाती रही है। लेकिन इस तरह से इसे कब तक सजा दी जाती रहेगी? इस कर का विरोध करता हूं और इस कर को राजस्व का स्रोत नहीं बनाया जाना चाहिए। नमक कर निश्चित रूप से राजस्व का स्त्रोत नहीं होना चाहिए।

जैसे कि मैंने कुछ समय पूर्व ही कहा था कि अगर आप इसे राजस्व का स्रोत बनाते हैं तो आप इसे हमेशा लगाते रहेंगे। क्योंकि गरीब और अमीर सभी थोड़ा बहुत नमक तो खाते ही हैं और इस प्रकार यह कर आपका आय का निश्चित स्रोत बना रहेगा। आप हमेशा ही गरीब आदमी को चूसते हैं, गरीब आदमी पर अधिक कर लगाते हैं। इससे आप लोगों को एक साधारण खाद्य पदार्थ से वंचित करते हैं जोकि अमानवीयता है। यह तो भोले और कमजोर लोगों की हत्या करने के बराबर है। यह ऐसा कर है।

आप कह सकते हैं कि फ्रांस, इटली, ब्राजील गणराज्य में इस प्रकार का कर है। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, मगर इंग्लैंड में यह कर नहीं है। वहां कुछ अन्य कर हैं। बड़े देशों में इस प्रकार का कर है। इसलिए भारत में इसे क्यों न लगाया जाए। पश्चिम में और पश्चिमी देशों में यह कर लगा है, मैं जानता हूं। लेकिन मैं उन परिस्थितियों का उल्लेख नहीं करना चाहता जिनके कारण वहां नमक कर लगाना पड़ा मैं विदेशों के बजाय, अपने देश की हालत पर नजर डालना चाहता हूं। ब्राजील में अगर नमक कर लगा हुआ है, तो इससे मुझे क्या लेना देना है। मैं ब्राजील नहीं गया। आपके पास अनेक पुस्तकें, खाते आदि होंगे। कल ही मेरे और मेरे मित्र श्री चमन लाल के कथनों पर इस कारण पर आपत्ति की गई थी कि हमने स्वयं व्यक्तिगत रूप से असम के चाय बागानों का दौरा नहीं किया था। इसी कारण से हमारे कथनों को ठीक नहीं माना गया। चाहे आप हमारी बात को ठीक माने या न माने चाहे वह तथ्यात्मक हो या न हो, चाहे आपको तर्कसंगत लगे या न लगे, मैं विश्व में जो कुछ हो रहा है, उसके संबंध में कुछ नहीं कहना चाहता। परन्तु मैं गरीब व्यक्ति के रक्त पर लगने वाले इस नमक कर का न तो व्यक्तिगत रूप से समर्थन करुंगा और न ही नैतिकता के आधार पर।

* * * *

महोदय, मैं कह रहा था कि नमक कर को राजस्व का स्रोत नहीं बनाया जाना चाहिए। यह बड़ी आसानी से पूछा जा सकता है कि यदि इसे सरकारी राजस्व का स्रोत नहीं बनाना है, तो आप इसके स्थान पर किस स्रोत से राजस्व प्राप्त करना चाहेंगे। भारत में बने नमक पर सम्पूर्ण कर को पूरी तरह समाप्त करने के दो कारण हैं। मैं इन्हें थोड़ा सा स्पष्ट करुंगा। इसका एक कारण यह है कि यह एक संरक्षण देने वाला विधेयक है। पिछले दिन जब अनुदान मांगों पर चर्चा की जा रही थी, तो हमने नमक के लिए अनुदान की मांग में इस आधार पर कटौती करने का प्रस्ताव किया था कि नमक के सम्बन्ध में भारत को आत्मनिर्भर बनाया जाना चाहिए। भारतीय नमक ही पूरे देश में सप्लाई किया जाना चाहिए। इसमें एक कठिनाई है। मुख्य कठिनाई है विदेश से आयातित नमक की। पहले दिन यह कहा गया था कि यदि हम भारतीय नमक को विदेशी नमक की तुलना में काफी सस्ता नहीं कर सकते, तो जहां तक नमक का सम्बन्ध है, हम अगले 20 वर्षों तक भारत

को नमक के मामले में आत्मनिर्भर बनाने की आशा नहीं कर सकते। आयातित नमक पर भारतीय नमक को संरक्षण प्रदान करने हेतु बहुत भारी टैरिफ शुल्क लगाना बहुत कठिन होगा। नमक कर कई कारणों से ठीक नहीं है। जैसाकि मैंने कहा है, यह एक व्यक्ति कर है, अनुचित कर है, यह आदमी के रक्त पर कर लगाने जैसा घृणित कार्य है। इन सब बातों को महसूस करते हुए और संस्कृति से भारतीय होते हुए हम अपनी समूची ऐतिहासिक परम्परा में मानव पहले हैं किसी राष्ट्र के सदस्य बाद में हैं। अतः हमारे लिए यह कहना उचित नहीं है कि इंग्लैंड के नमक पर, जर्मनी के नमक पर अथवा अदन के नमक पर कर लगाया जाये। हमारे देश के नमक पर नहीं। यह ठीक नहीं लगता। किन्तु हम यहां स्वदेशी नमक को कुछ थोड़ा बहुत संरक्षण प्रदान करने के लिए मजबूर हैं, और इसका तरीका क्या है? मैं आपको एक तरीका बताऊंगा। तरीका यह है कि स्वदेशी नमक पर उत्पाद कर अर्थात् शुल्क समाप्त कर दिया जाए। तब आयातित नमक पर यह राशि 1-4-0 रुपए प्रति मन रह जाती है और यह संरक्षण प्रदान करने का एक उपाय है।

कहा जाता है कि बंगाल, बिहार और उड़ीसा तथा असम के कुछ भागों में लोगों को पूरी तरह विदेशी नमक पर निर्भर रहना पड़ता है। लगभग गत सौ वर्षों के दौरान उनकी पसन्द स्वभावतः अथवा कृत्रिम रूप से, जो भी हो, विदेशी नमक का ही प्रयोग करने की बन गई है या बना दी गई है। विदेशी नमक को अच्छा बताया जाता है और इसके कारण इसके उपयोग के वे आदी हो गए।.....

मेरे माननीय मित्र (श्री सी० दुरई स्वामी आयंगर) ने पिछले दिन इसे पूरी तरह से सिद्ध कर दिया था कि आम आदमी के लिए यहां तक कि बंगाल और असम में भी गुणवत्ता विशेष मायने नहीं रखती। उनके लिए नमक की गुणवत्ता का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि इसकी अनुपलब्धता का प्रश्न है। इसे यहां उपलब्ध नहीं कराया जाता। हमारी यह स्थिति है। लेकिन यदि तर्क के लिए ऐसा मान भी लिया जाए कि लोगों का एक विशिष्ट वर्ग इसकी गुणवत्ता के कारण इसकी ओर आकर्षित होता है, तो सरकार भी इस बात से सहमत होगी कि समाज के केवल अधिक धनी लोगों की ऐसी पसन्द है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जब संरक्षण की बात आती है तो इस मामले में अधिक धनी और अधिक समृद्ध वर्ग, जो बंगाल में स्वदेशी नमक का बाजार समाप्त करने के लिए, सरकार के अतिरिक्त, मुख्य रूप से उत्तरदायी है, को चाहिए कि वह निर्धन वर्ग को राहत प्रदान करने के लिए नमक के लिए अधिक मूल्य का भुगतान करे।

यह बहुत ही छोटा भार होगा और, मुझे विश्वास है, इन लोगों को इतना देने में कोई आपत्ति न होगी। यदि इस देश में किसी विशिष्ट देशी उद्योग, अर्थात् स्वदेशी उद्योग को संरक्षण प्रदान करने के प्रयोजन के किसी पर कर लगाया जाए तो उक्त

वर्ग के लोग इस प्रकार के भार को बिना किसी कठिनाई के सहन कर सकते हैं और ऐसा करना उनके लिए उचित ही होगा। इस मामले में वास्तव में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होगी।

मेरा दूसरा कारण यह है कि इस समय शायद हमारे लिए यह संभव नहीं है कि हम टैरिफ शुल्क समाप्त करने का सुझाव दें । नमक कर को पूर्णतः समाप्त करने की इच्छा के बावजूद मैं ऐसा नहीं कर सकता। मेरा नमक पर केवल उत्पाद शुल्क समाप्त करने का सुझाव है—शायद मेरे कुछ मित्र इसका महत्व नहीं समझते हैं; मैं उनसे क्षमा चाहता हूं, हो सकता है मैं उन्हें अपनी बात ठीक से समझा नहीं पाया हूं । विधेयक में कहा गया है 'भारत में निर्मित अथवा भूमिमार्ग से यहां आयातित नमक' न कि बर्मा में निर्मित नमक । अर्थात् यदि हम इस विधेयक को ज्यों का त्यों पारित कर देते हैं, तो हम अकेले स्वदेशी नमक पर ही शुल्क लगाते हैं । यह विधेयक केवल नमक पर उत्पाद शुल्क के लिए है । इससे हमारे लिए कठिनाई उत्पन्न होती है । इस विधेयक में हम कोई संशोधन लाकर भी आयातित नमक पर शुल्क समाप्त न कर सकेंगे । उक्त शुल्क अर्थात् टैरिफ शुल्क, टैरिफ अधिनियम के अनुसार, इस उत्पाद शुल्क के आधार पर लगाया गया है, जो भारतीय नमक अधिनियम की धारा 7(2) के अन्तर्गत बनाए गए नियमों के द्वारा गवर्नर जनरल इन कौंसिल द्वारा समाप्त किया जा सकता है । अतः आयातित नमक पर कर लगाए जाने के प्रयोजन से भविष्य में शुल्क लगाया जा सकेगा, किन्तु माफ करने के प्रस्ताव के कारण स्वदेशी नमक पर यह शुल्क वसूल नहीं किया जाएगा । अब, मुझे आशा है, यह स्पष्ट है कि जहां तक इस अधिनियम का सम्बन्ध है, नमक शुल्क को पूर्णतः समाप्त करने के लिए कोई आधार नहीं है और इस आशय के किसी संशोधन का प्रस्ताव करने से पूर्व हमें महामहिम वायसराय की पूर्व स्वीकृति लेनी होगी। ऐसा संशोधन, जैसाकि मैं इसे समझता हूं और जहां तक मैंने गत वर्षों में अनुभव किया है, का अभिप्राय इस विधेयक के पाठ में कुछ नई बात जोड़ना है। यदि आप ऐसा करना चाहते हैं, तो आप यह कार्य केवल किसी संशोधन के द्वारा नहीं कर सकते । दो वर्ष पहले, मैंने इस प्रश्न पर विचार किया था, और मैंने उक्त आशय के इस खंड विशेष में संशोधन करने की स्वीकृति मांगी थी। मुझे अपने माननीय मित्रों को यह बताते हुए खेद हो रहा है कि मुझे इसकी स्वीकृति नहीं दी गई है । अतः इन दो कारणों की वजह से मैंने इस संशोधन विशेष का प्रस्ताव किया है ।

जहां तक अन्य देशों का सम्बन्ध है, मैं वहां विद्यमान परिस्थितियों के सम्बन्ध में चर्चा नहीं करुंगा; हमारी चिन्ता भारत के बारे में है और कुछ हद तक इंग्लैंड के बारे में भी है । इंग्लैंड मेरे उन माननीय मित्रों का घर है जो कि हमारे वित्तीय तथा राजनैतिक कार्यों का प्रबन्ध करते हैं । जब वे निर्धन व्यक्ति के चुटकीभर नमक से पैसा बनाने की बात

में देना पड़ता था। यदि आप राजा के पक्ष की दृष्टि से देखें तो यह एक कर था । परन्तु मैं आपको एक बात स्पष्ट रूप से अवश्य कहना चाहता हूं कि भारत में राजा द्वारा लोगों पर कभी भी किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जाता था। मैं कह सकता हूं कि हमारी संस्कृति का मूल सिद्धान्त "कर्त्तव्य" था जबकि विश्व में व्यापक परिवर्तन हो चुका है और अब हमारा मूल सिद्धांत "अधिकार" है। अब राजा और प्रजा सदैव एक दूसरे से मांग करते हैं—राजा कहता है "मुझे मेरा कर दो", प्रजा कहती है "हमें प्रतिनिधित्व और राज्य की नीति निर्धारण करने का अधिकार दो" "कोई प्रतिनिधित्व नहीं तो कोई कर नहीं।" परन्तु प्राचीन काल में अस्तित्व अथवा राजतंत्र के लिए कोई संघर्ष नहीं था; राजा द्वारा प्रजा का दमन नहीं किया जाता था और लोग यह नहीं सोचते थे कि उन्हें राजा से अधिकार नाम की कोई चीज छीन लेनी चाहिए । उस समय ऐसी संस्कृति थी, कार्यकरण सुचारु था, एक दूसरे के हितों में सामंजस्य स्थापित था और ऐसी व्यवस्था में नमक-कर सम्भव ही नहीं हो सकता। अतः नमक कर के प्राचीन इतिहास को सिद्ध करने के लिए कोटिल्य का उल्लेख करने का औचित्य नहीं है?

*　　*　　*　　*

हमें बताया गया है कि मुस्लिम शासन के दौरान नमक कर वसूल किया जाता था परन्तु वह कितना था? वह केवल $2\frac{1}{2}$ से 5 प्रतिशत था। क्या यह भी कोई कर था? मैं नहीं कह सकता कि यह वास्तविकता क्या थी? शायद जैसे भूमि की पैदावार पर कर लिया जाता था उसी प्रकार समुद्री उत्पाद अथवा समुद्र अथवा भूमि से नमक का उत्पादन करने वाली भूमि पर कर लिया जाता था । यह एक सामान्य कर के रूप में था; कोई नमक-कर नहीं था, कोई चुनाव कर नहीं था, कोई प्रतिव्यक्ति कर नहीं था । यही बात मैं सदन के सदस्यों के ध्यान में लाना चाहता हूं कि यह केवल $2\frac{1}{2}$ से 5 प्रतिशत था। अब क्या कोई भी वर्तमान नमक-कर से इसकी तुलना करेगा? वर्तमान नमक कर की दर क्या है? वर्तमान नमक कर की दर 1000, 1,200 प्रतिशत है। क्या यह उचित गणना है? यह इससे भी अधिक होगा क्योंकि कभी नमक का मूल्य 1 आना 6 पाई हो जाता है जब कि कर एक रुपया चार आना है। तीन गणनाओं के सही नियमों के अनुसार यह कितना होता है? यह 1,600 प्रतिशत है। क्या मैं सही बोल रहा हूं? और मुस्लिम काल के दौरान यह $2\frac{1}{2}$ से 5 प्रतिशत था । मैंने यह अंग्रेजों द्वारा लिखी रिपोर्टों—जोकि प्रमाणित हैं, से प्राप्त किया है परन्तु उद्धृत करने के लिए मेरे पास नहीं है । क्या यह भी कोई कर था?

यदि आप पूछते हैं कि नमक कर का स्वरूप क्या है तो मैं आपको पहले ही बता चुका हूं कि यह सरकारी राजस्व भण्डार है । तो प्रत्येक व्यक्ति, स्कूल जाने वाला प्रत्येक बच्चा मोहम्मद तुगलक की कहानी जानता है कि वह आदर्शवादी विद्वान बादशाह आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किये बिना उनमें उलझा रहा और यदि उन दिनों ऐसा होता तो वह

पहला व्यक्ति होता जो इस कर को लगाता । उसे धन की आवश्यकता थी वह "पोल टैक्स" लेने घर-घर गया । राज्य के खर्च के लिए उसने हताश होकर प्रजा की सम्पत्ति अपने आधिपत्य में ले ली । उसे धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। वह नोट (मुद्रा) जारी करना चाहता था । मेरा आशय है कि वह खजाने में किसी प्रकार के धात्विक भंडार के बिना कागजी मुद्रा जारी करना चाहता था और वह चाहता था कि बादशाह की मुहर लगे हुए तांबे के सिक्कों को सोने और चांदी के सिक्कों की तरह चलाया जाये। उसने धन एकत्रित करने के कई उपाय किये लेकिन तब भी उसने नमक कर लगाने की बात नहीं सुनी। इन बतूता ने भी जोकि एक प्रसिद्ध अफ्रीकी यात्री था, मोहम्मद तुगलक का मित्र था और सात वर्ष तक व्यवहारिक रूप से उसके सम्पर्क में रहा, मोहम्मद तुगलक के बारे में इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया है । या ऐसी बात है कि वह इसका उल्लेख नहीं कर सका, नहीं । महोदय मैं फिर कहता हूं कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने से पहले नमक कर नहीं था।

मैं पंजाब में सिख शासन के बारे में कुछ बताना चाहूंगा कि थोड़ा सा धन यद्यपि यह नगण्य था, नमक क्षेत्र में, जिस पर आज भी भारत सरकार का आधिपत्य है, खानों को पट्टे पर देकर वसूल किया जाता था लेकिन नमक पर इस प्रकार का कर नहीं लगाया जाता था। यद्यपि पंजाब में सिख शासन काल में जबकि उस समय भारत के अन्य भागों में ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन था जब इन खानों को पट्टे पर दिया गया तो उस दौरान हम पंजाब में नमक क्षेत्र में नमक कर लगाने की उम्मीद कर सकते थे, लेकिन उस समय इस प्रकार के किसी कर की बात सुनने में नहीं आती। यह केवल खानों को पट्टे पर देना मात्र था। नमक कर जैसी कोई बात नहीं थी। जिस प्रकार जमींदार अपनी पत्थर की खानों को किराये पर देता है या सरकार अपनी चांदी की खानों को पट्टे पर देती है उसी प्रकार खनन व्यवस्था के अंतर्गत नमक के क्षेत्र में खानों को पट्टे पर दिया जाता था।

लेकिन तार्किक दृष्टि से इस बात को स्वीकार करते हुए कि भारत में नमक कर था, जैसा कि आज है, तार्किक दृष्टि से मैं मानता हूं कि ऐसी स्थिति थी, लेकिन क्या माननीय वित्त सदस्य इस बात पर ध्यान देंगे कि हर प्रकार की सप्लाई के स्त्रोत जनता के लिए खुले थे? पंजाब में नमक की खान से नमक निकालने और सिंध से चटगांव तक समुद्र में जनता को नमक बनाने की छूट थी। एकाधिपत्य किसने शुरू किया? भारत में एकाधिपत्य शब्द ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ आया। नमक का एकाधिपत्य नामक अभिशप्त शब्द इस देश में ब्रिटिश व्यापारी शासकों के साथ आया। अतः यह स्पष्ट है कि इससे पहले भारत में नमक के मामले में एकाधिपत्य नहीं था। और यदि आप कहते हैं कि नमक कर था तो यह अपने आप में एक विरोधाभास होगा। लोग फैक्टरियों में नमक नहीं बनाते थे और "नमक महल" शब्द का शायद ईस्ट इंडिया

कम्पनी ने लाभ उठाया। उन दिनों में नमक का निर्माण बड़े पैमाने पर एक जगह पर नहीं होता था। कभी-कभी लोग समुद्र से बर्तन में पानी लाते थे उसे अपने घरों में उबालते थे और नमक तैयार कर लेते थे। मैं अब सभा को बताऊंगा कि गरीब जनता पर किस प्रकार एकाधिकार पद्धति ने लोगों का दमन किया है और वास्तव में किस प्रकार यह जनता के ही ऊपर लागू की गई और लोग किस प्रकार गुपचुप रूप से नमक तैयार करते थे जिसके लिए उन्हें नहीं बल्कि उनके जमींदारों को दण्डित किया गया।

लेकिन आज आप कह सकते हैं कि यदि हम नमक को कर मुक्त कर दें तो दूरदराज के क्षेत्रों में इसकी सप्लाई कैसे हो पायेगी? उन्हें इसके लिए काफी खर्चा उठाना पड़ेगा और समुद्र तट से दूरदराज के क्षेत्रों में नमक ले जाने में काफी कठिनाई उठानी पड़ेगी। आप ऐसा कह सकते हैं लेकिन महोदय मेरे पास इस बारे में मुद्रित सामग्री है जिससे यह सिद्ध होता है कि समूचे भारत की भूमि लवणमय है जिससे आसानी से नमक निकाला जा सकता है और मैं नहीं जानता कि इस मौके पर आज आप मेरा विश्वास करेंगे कि नहीं यह महोदय इस प्रकार बनाया जाता है पहले मिट्टी लें और फिर उसे पानी में डालें इसके बाद पानी को छानकर उसे उबाल लें उसके बाद उसे वाष्पित करके सुखाएं तो जो कुछ शेष बचेगा वह नमक होगा। इस प्रकार से नमक बनाया जाता है और नमक बनाने के लिए इस प्रकार की भूमि प्रकृति ने प्रचूर मात्रा में दी है और इस प्रकार की मिट्टी मेरे मित्र के निवास स्थान इलाहाबाद में भी पाई जाती है।

* * * *

नमक का उत्पादन केशायर नमक की तरह ''छोटे-छोटे सुगठित क्रिस्टलो'' में होता था। ''लाल मिट्टी'' से तैयार किया हुआ नमक गंदा होता है और देखने में लाल होता है। पहले वाला नमक खासकर मानव उपभोग के लिए होता है और बाद वाला नमक विशेषकर पशुओं के लिए उपयोग किया जाता है। महोदय इस बात पर ध्यान दीजिए कि प्रत्येक घर में पशुओं को नमक दिया जाता था।

महोदय, हाल ही में रायल सोसाइटी आफ आर्टस में सर थामस हालैंड ने अपने भाषण में सरकार की भूमि से पैदा किये जाने वाले नमक संबंधी नीति की आलोचना की थी। उन्होंने आरोप लगाया था कि मिट्टी से नमक तैयार करने पर प्रतिबंध का गरीब जनता पर कुप्रभाव पड़ा है। उन्होंने कहा कि यह नीति कृषि कार्यों के लिए नमक की सप्लाई को सीमित करने के लिए जिम्मेदार है जिसके कारण भारत में कृषि के उत्पादन के प्रतिकूल गिरावट आई है। सर थामस हालैंड ने इस प्रकार की आलोचना की है।

महोदय, पांच वर्ष पहले मार्च, 1924 में इस सभा में नमक मिट्टी के बारे में एक सवाल उठाया गया था जो समुद्र के किनारे रहने वाले व्यक्ति नहीं बल्कि सूरमा घाटी में

रहने वाले व्यक्ति अर्थात् श्री अहमद अली खां द्वारा उठाया गया था। वे एक उद्योग-लगाने पर दबाव डाल रहे थे जिसके विलोपन से उनके अपने चुनाव क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और वास्तव में इस समय मेरे मित्र श्री एस. सी. दत्ता उसी चुनाव क्षेत्र से हैं जिन्होंने मुझे बताया है कि उनके जिले में न केवल लवण युक्त भूमि है बल्कि वहां उनके अपने उद्यानों और फल उद्यानों में ऐसे झरने हैं जिनका पानी लवणयुक्त है और पहले नमक उसी पानी से बनाया जाता था। अब महोदय वहां एक पत्थर लगा दिया गया है और उस क्षेत्र को सुरक्षित कर दिया गया है ताकि कोई व्यक्ति वहां से नमक बनाने के लिए पानी का एक लोटा भी वहां लेने न जा सके। लेकिन वास्तविक स्थिति कुछ भी हो, श्री अहमद अली खां द्वारा उठाये गये प्रश्न का जवाब यह था कि "भारत सरकार प्रतिबंधों को समाप्त नहीं करेगी और न वे इस संबंध में कोई जांच करना उचित समझते हैं कि गरीब जनता को किस प्रकार की और कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।" मुझे उम्मीद है कि मेरे माननीय मित्र सर जार्ज सकुस्टर इन शब्दों पर गौर करेंगे सरकार इस संबंध में जांच करवाना उचित नहीं समझती कि गरीब जनता को किस प्रकार की और कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। महोदय हम इस सभा में कई अवसरों पर यों ही चिल्लाते रहे हैं कि दिन प्रति दिन विलुप्त होते जा रहे कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जाये। निसन्देह, कुटीर उद्योंगो की समाप्ति से आम जनता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है लेकिन महोदय में आपको बताना चाहता हूं कि समूचे भारत में नमक उद्योग कुटीर उद्योग के रूप में था जो मंदी के समय में जनता को रोजगार उपलब्ध करता था जिसके लिए महात्मा गांधी अब प्रयास कर रहे हैं—मैं उनके हाथ में चरखे का स्वागत करने अथवा न करने के लिए नहीं कह रहा हूं.....

लेकिन मैं कहता हूं कि नमक का निर्माण नमक के कराधान से संबंधित है। *यदि आप नमक से कर हटा दें तो मैं सभा को यह बताना चाहूंगा कि लोग किस प्रकार कुटीर उद्योग लगायेंगे, किस प्रकार वे सम्पन्न होंगे, कैसे वे आगे बढ़ेंगे, कैसे उनकी खेती उन्नत होगी और कैसे वे अपने पशुओं को चारे के साथ नमक खिलायेंगे। मेरा कहना है कि नमक पर कराधान के सवाल के प्रति यह सब प्रासंगिक है। आपने 1927 में उड़ीसा में बालासौर जिले में आई बाढ़ के बारे में सुना है। यह नमक उत्पादक जिला था। पहले वहां नमक के बड़े-बड़े केन्द्र थे लेकिन आज वहां एक भी ऐसा केन्द्र नहीं है और लोग बेरोजगार हो गये हैं लोग बाढ़ में डुबे जा रहे हैं। अकाल में भूखों मर रहे हैं। इन रायातों की कोई परवाह नहीं करता कभी-कभी इन पर सिरदारों द्वारा प्रलोभन देकर फंसाया जाता है और असम के बागानों में भेज दिया जाता है। यदि उनके पास भूमि का कोई टुकड़ा

---

*उपाध्यक्ष ने हस्तक्षेप कर पंडित नीलकण्ठ दास को याद दिलाया कि सभा में नमक के निर्माण पर नहीं बल्कि नमक के कराधान पर चर्चा हो रही है।

भी है तो इसमें कुछ पैदा नहीं होता। क्योंकि जिस भूमि पर पहले नमक का निर्माण किया जाता था उस पर चावल पैदा नहीं किया जा सकता। जिन व्यक्तियों को इस प्रकार की भूमि का अनुभव है वे आपको बता सकते हैं कि जिस भूमि पर लगभग अर्द्ध शताब्दी तक नमक का निर्माण होता रहा उस भूमि को सर्वोत्तम वैज्ञानिक तरीकों से भी उपजाऊ नहीं बनाया जा सकता। यदि उनके पास अब भूमि का एक टुकड़ा है उस भूमि पर कर लगाया जाता है चाहे उस पर खेती करें या उसे खाली छोड़ दें क्योंकि यह रायाती काश्तकारी है—और कर का भुगतान करने के लिए इन रायातों को जमशेदपुर अथवा कलकत्ता जाकर धन कमाना पड़ता है और तब वे कर का भुगतान करते हैं। वर्ष 1927 में उनकी स्थिति बेहतर थी उन्हें अपना नमक बनाने की इजाजत थी और परन्तु मेरे पास आंकड़े तो नहीं हैं लेकिन उक्त भूमि को छोड़कर वे नहीं जाते थे।

यह सरकार का नमक है। मैं सरकार की प्रशंसा नहीं कर सकता। वे बहुत स्वस्थ थे और मैंने उन्हें नमक बनाते देखा है। सरकार में उन्हें ऐसा करने से रोकने की हिम्मत नहीं थी। धीरे-धीरे कुछ निवारक अधिकारी अथवा कुछ अन्य अधिकारी गुप्त रूप से उन पर तैनात किये गये और स्थानीय अधिकारियों से उन पर 5 या 6 अथवा 10 रुपये का कानून के अनुसार जुर्माना कराया गया। जिस प्रकार सरकार चाहती थी उस प्रभाव को पैदा करने के लिये इतना ही पर्याप्त था क्योंकि लोग आतंकित हो गये थे। संभवतः अब वे पहले की तरह बड़ी संख्या में औद्योगिक केन्द्रों, फिजी तथा अन्य स्थानों को पलायन कर रहे हैं।

मुझे नहीं पता कि क्या उनमें से कुछ व्यक्ति अपने साथ नमक ले जाते हैं जैसा कि जहाजों से लिवरपूल से कलकत्ता आने वाले करते हैं। यह सब कहने से मेरा प्रयोजन यह दर्शाने का है कि किस प्रकार निवारक अधिकारियों के नाम पर पूरा जासूसी तंत्र, किस प्रकार निरंतर कार्यरत है जिससे कि सरकार से सीधी खरीद किये बिना लोगों को चुटकी भर नमक भी नहीं मिल सके। नैतिक पतन कराने वाले इन तंत्रों का, जिसके कुछ कीटाणु गुप्तचर विभाग में विकसित हुए हैं, गठन उसी आरम्भिक समय से हो गया था जबकि सर्वप्रथम ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार आरम्भ हुआ था। उस समय उनका अस्तित्व एकदम ताजा और नया था। वह काल विनियमों का काल था। उन दिनों इस प्रकार के कोई कानून नहीं थे जैसे कि आज हैं। उस समय दो विनियम थे, 1819 का विनियम 10 और 1826 का विनियम 10, जिनका मैं उल्लेख यहां करना चाहूंगा। उनमें से एक विनियम अर्थात 1819 के विनियम के अनुसार नमकीन पानी को उबालना अपराध था। दूसरे विनियम अथवा सन् 1819 के विनियम में एक विचित्र बात थी जो बड़ी रोचक है। 1826 के विनियम के अन्तर्गत नमकीन पानी में भीगी घास-फूस जलाने पर कठोर दण्ड देने का प्रावधान था। यदि उसे जलाया जाता था तो उसके लिये क्या सजा दी जाती थी।

उन दिनों वे इतने सभ्य नहीं थे। उन दिनों अपराधिता संभवतः एक से दूसरे पर अन्तरित की जा सकती थी। मेरा अनुमान है कि उस समय सजायें प्रतिनिहित करने की अनुमति थी। जमींदार पर उसके किसी भी काश्तकार के अपराधिक मामले पर प्रत्येक मामले में 500 रुपये का जुर्माना किया जाता था और उन मामलों का निपटारा किसी न्यायिक अधिकारी द्वारा नहीं किया जाता था। एक अन्य अत्यधिक अजीब बात प्रचलित थी यदि किसी जमींदार के 2, 3 या 4 अथवा 5 सहभागीदार होते थे तो प्रत्येक अपराध के लिये 500/- रुपये का वह जुर्माना विभाजित नहीं किया जाता था। प्रत्येक भागीदार पर एक ही मामले में 500/- रुपये का जुर्माना किया जाता था। इसी कानून के संबंध में देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की ओर से एक याचिका दायर की थी जिसमें उन्होंने कहा था:

> सामान्यतः,निर्धन रैय्यत ही जिनमें प्रायः अपने जमींदारों के विरुद्ध कोई दुर्भावना नहीं थी और जो इतनी जरूरी वस्तु के लिए इतनी अधिक कीमत अदा करने में असमर्थ थे, अपने खाना पकाने के बर्तनों में हर रोज अपनी अंगीठी पर अथवा नमकीन पानी में सराबोर घासफूस को जलाकर अपनी घरेलू खपत के लिए थोड़ा सा नमक तैयार करके इस कानून के घेरे में आती थी। यह रैयत जिस तरीके से अपनी दैनिक खपत के लिए नमक तैयार करती थी उसके पता लगने की कोई संभावना नहीं थी .....

फिर भी यदि कोई मामले पकड़े जाते तो? श्री देवेन्द्र नाथ टैगोर पर प्रत्येक अवसर पर 500/- रुपये का जुर्माना किया गया था। मैं इस लम्बे इतिहास को दोहरा कर इस सभा के धैर्य की परीक्षा नहीं लेना चाहता कि किस प्रकार कठोरता बढ़ती गई और इसके परिणामस्वरूप 125 वर्षों के दौरान कितने निर्धन लोगों को मार दिया गया था। उड़ीसा में पड़े दुर्भिक्ष के बारे में 1866 की रिपोर्ट के पृष्ठ 222, पैरा 49 में यह कहा गया है कि नमक पर सरकार के एकाधिकार के कारण "नमक बनाने वालों पर, जो अपनी निःसहाय अवस्था के कारण भूमिहीन श्रमिक बन गये थे" इस विपदा का सर्वाधिक भार पड़ा। संभवतः आपको उस दुर्भिक्ष में मरने वालों की संख्या मालूम नहीं। मैं अब उड़ीसा और बंगाल के दुर्भिक्ष के संबंध में सरकार की रिपोर्ट उद्धृत कर रहा हूं। 60 लाख की आबादी में से 20 लाख व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी। अर्थात एक तिहाई आबादी मर गई थी और मूल रूप से नमक का यह एकाधिकार इस विपत्ति के लिये उत्तरदायी था।

इसके पश्चात् नमक कर के इतिहास का दूसरा अध्याय आरम्भ होता है। आज मैं आयातित नमक के संबंध में अपना संशोधन रख रहा हूं। महोदय ईस्ट इंडिया कम्पनी ने यहां पर अपना कार्य आरंभ किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी जब यहां आई थी जब उसने इस नमक पर झपटा मारा। इस नमक के निर्माता कौन थे और इस पर कौन कर देता था? जैसा कि मैंने कुछ दिन पूर्व संकेत किया था कि कम्पनी के कर्मचारियों को वेतन नहीं

दिया जाता था। उनको जनता को लूटने की छूट दी जाती थी। यह वास्तविकता है। मेरे एक मित्र ने मुझे बताया था कि वह बहुत बड़े इतिहासकार, विन्सेंट स्मिथ से मिलने गया था। वह अपनी पुस्तकों में व्यस्त थे। मेरे मित्र को पता चला कि उनके पुस्तकालय में ईस्ट इंडिया कम्पनी और उसके कर्मचारियों के कार्यकलापों और गतिविधियों के बारे में बहुत सारा अभिलेख है। उन्होंने विनसेंट स्मिथ से पूछा, "मुझे आपकी पुस्तक में उन बातों के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता जिनके बारे में पता चलना चाहिए।" इतिहासकार ने कहा—"प्रिय मित्र, मैं क्या कर सकता हूं? मैंने यह महसूस किया कि ये व्यक्ति पूर्णरुपेण दुष्ट थे किन्तु राजनैतिक कारणवश मैंने उनके बारे में कुछ भी नहीं लिखा है।" मेरे मित्र ने यह सब मुझे बताया। मुझे नहीं पता कि यह कहां तक सही है किन्तु चूंकि मुझे नमक कर के बारे में जो कुछ पता है, उसके आधार पर मैं इस सब को सच मान सकता हूं। मुझे पता है कि कम्पनी के आरंभिक कर्मचारियों को जनता से निपटने के लिये कैसे उन्मुक्त छोड़ दिया गया था। उन्हें बहुत कम धनराशि दी जाती थी और उन्हें व्यापार करने तथा लोगों को लूटने की खुली छूट थी। उन्हें नमक निर्माण से रोकने के लिये संकल्प लाया गया था। इसके बारे में क्या उत्तर दिया गया था? उन्हें धन कमाने का अवसर मिलना ही चाहिये। नौकरी के लिये कुछ प्रोत्साहन तो होना ही चाहिये।

ईस्ट इंडिया कम्पनी खूब धन कमा रही थी। इंग्लैण्ड में यह चर्चा उठी कि दुकानदारों के इस राष्ट्र में केवल कुछ ही व्यक्ति क्यों यह लाभ अर्जित करें? भारत में थोड़े से ही व्यक्ति क्यों धन कमा रहे हैं? अन्य लोगों को उससे क्यों वंचित रखा जा रहा है? बोरों आफ ड्रोटविच ने यह शिकायत की। तत्पश्चात ग्लूसेस्टर नगर के वाणिज्य मंडल ने भी यह कहा कि ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा नमक बनाया जाना स्पष्टतः निषिद्ध कार्य है और इससे विलियम-चतुर्थ, सी. 85 के अधिनियम 8 का उल्लंघन होता है और उसने "ब्रिटेन के व्यापारी को उस बाजार के लाभ से वंचित करने के प्रति विरोध प्रकट किया जिसे पाने के उसके स्वाभाविक अधिकार और सर्वोपरि दावे को स्वीकार किया जाना चाहिये।" ब्रिस्टल, लिबरपूल और अन्य महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्रों के वाणिज्य मंडलों द्वारा भी इसी प्रकार के संकल्प पारित किए गए।

मैं अपनी बात बहुत संक्षेप में रखूंगा यद्यपि इस विषय पर मेरे पास बहुत कुछ कहने को है और प्रासंगिक है तथापि उसका वर्णन अत्यधिक कष्टकारक है। जहां तक शुल्क लगाये जाने का संबंध है इसका उद्देश्य इंग्लैण्ड के व्यापारियों को भारत के बाजार की सुविधायें उपलब्ध कराना था जिसके वे सर्वोपरि और स्वाभाविक अधिकारी थे। वह सर्वोपरि और स्वभाविक अधिकार क्या है? मैं इसके बारे में कुछ नहीं कह सकता और न मैं कुछ कहना ही चाहता हूं। मैं कोई कटु बात नहीं कहना चाहता विशेषकर ऐसी स्थिति में जब मेरा ऐसा मित्र पीठासीन है जो स्वयं नम्र और मीठे स्वभाव का है। इसका सिद्धांत

क्या है? यह वह सिद्धांत है जिसकी कल्पना सबसे पहली बार भारत के विख्यात सेक्रेटरी आफ स्टेट, ड्यूक आफ अर्गिल द्वारा की गई थी कि निर्धन व्यक्ति को कुछ न कुछ देना चाहिये। मैं अधिक समय नहीं लूंगा। ड्यूक आफ अर्गिल ने कहा था:—

"सामान्य सिद्धांत के आधार पर नमक पर कर लगाना पूर्णरूपेण न्यायसंगत है। सारी जनता को प्रत्यक्ष करों के अन्तर्गत लाया जाना असंभव है। यदि आम जनता को राज्य के व्यय में भागीदार बनाना है, तो यह तभी संभव है जबकि कुछ ऐसी वस्तुओं पर कर लगाया जाये जो सभी के द्वारा उपयोग की वस्तुऐं हों और भारत में नमक के अलावा कोई ऐसी वस्तु नहीं है। अतः मेरे विचार से भारत में नमक पर कर को सार्वजनिक राजस्व का एक न्यायोचित और महत्वपूर्ण स्रोत समझा जाना चाहिये।"

मेरे विचार से यह अप्रत्यक्ष कर नहीं है, जैसा कि इसके बारे में कहा जाता है, अपितु यह प्रत्यक्ष कर है और यदि मुझे समय मिले अथवा यदि आप मुझे समय दें तो मैं इस बात को सिद्ध कर सकता हूं।

हमारे नमक कर का यह सिद्धांत है—हमारे नमक का यही मैग्ना कार्टा है और जैसा कि मेरे मित्र श्री अणे मुझे याद दिलाना चाहेंगे—और यदि यही सिद्धांत है तो क्या मैं पूछ सकता हूं कि बाजार में निर्धन व्यक्ति की दियासलाई के संबंध में क्या स्थिति है? क्या इस पर कर नहीं लगता है? क्या दियासलाई पर कर देकर हम अपने राज्य की तिजोरी नहीं भर रहे हैं?

*　　*　　*　　*

किन्तु इस विषय के महत्व को तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि हम 150 वर्षों से अधिक समय से यह कर अदा कर रहे हैं, मैं समझता हूं कि यदि इस वर्ष में उन सरकारी सदस्यों को सन्तुष्ट करने का प्रयास न करूं जो अभी तक तर्क द्वारा संतुष्ट नहीं हो पाये हैं तो मैं अपने कर्त्तव्य में असफल रहूंगा। मैंने पूछा था कि यदि नमक कर का सिद्धांत यह है कि प्रत्येक गरीब आदमी को गरीब के संरक्षण के लिए राज्य को कुछ न कुछ देना चाहिए तो संभवतः इसी सिद्धांत का दूसरा पहलू यह होगा कि गरीब आदमी को सरकार का संरक्षण है और उसे कुछ वास्तविक अथवा काल्पनिक लाभ मिलता है जिसके लिए उस पर कर लगाया जाता है। मैं यह पूछने जा रहा था कि इस देश में गरीब आदमी कितनी वस्तुओं पर कर नहीं देता है? क्या वह मिट्टी के तेल के लिए कर नहीं देता है? क्या वह माचिस पर भारी कर और आय कर नहीं देता है? आय-कर वास्तव में कौन देता है? जितने भी कर वसूल किए जाते हैं उन्हें वास्तव में कौन अदा करता है? वे सब मानव उपयोग की बुनियादी वस्तुओं पर लगाये जाते हैं। दाम बढ़ते हैं। मुद्रा में उतार चढ़ाव के कारण मूल्यों में वृद्धि व गिरावट होती है। अन्ततः वे किसे

प्रभावित करते हैं? मैं कहता हूं कि वह ऐसी चीज है जो देश के हर भाग में पहुंचती है, यह माचिस अथवा मिट्टी का तेल अथवा आय कर के अलावा है जोकि कभी-कभी ऋणी सीधे अदा करता है। वास्तव में मैं जानता हूं कि धन उधार देते समय कई साहूकार आय कर की रकम ब्याज के रूप में कुछ अनुपात में पहले ही वसूल कर लेते हैं। मैं यहां यह स्पष्ट कर दूं कि चावल और गेहूं जो गरीब आदमी का आहार है, ऐसी वस्तु है जिस पर अन्ततः लगभग सभी करों का भार पड़ता है। आप यह कैसे कह सकते हैं कि गरीब आदमी को कुछ न कुछ अदा करना चाहिए और वह भी नमक कर के रूप में? यह बात तर्क की कसौटी पर कभी भी सही नहीं कही जा सकती। यहां मैं श्री दादाभाई नौरोजी, जिन्होंने काफी समय पहले इसी विषय पर चर्चा की थी, के वक्तव्य का अंश उद्धृत करना चाहता हूं:

> "कितनी अपमानजनक बात है कि इतने लम्बे ब्रिटिश शासन के बाद लोग इतनी दयनीय स्थिति में हैं कि उनके पास कोई ऐसी वस्तु है ही नहीं जिस पर सरकार कर लगा सकती है और यह कि सरकार को जीवन को नितांत आवश्यक वस्तु पर कर लगाना पड़ रहा है।..... ब्रिटिश शासन की नीति की इससे अधिक क्या भर्त्सना हो सकती है कि लोगों के पास इतना धन भी नहीं कि वे अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सकें और कर भी दे सकें और अब हालत यह हो गई है कि उन्हें जीवन की अत्यावश्यक वस्तु से भी वंचित किया जा रहा है।

यह पंक्तियां हमारे प्रसिद्ध वयोवृद्ध दादाभाई नौरोजी द्वारा कही गई थी, जो एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने देश को एक ही शब्द स्वराज से राष्ट्रवाद का आदर्श ऐसे समय में प्रस्तुत किया जब सम्पूर्ण राष्ट्र अव्यवस्था की स्थिति में गुजर रहा था और जिन्होंने अव्यवस्था में सुव्यवस्था की स्थापना की। उन्होंने नमक कर के बारे में यह कहा था। उस समय उन्होंने नमक कर और सरकार की निन्दा की।

यह कहा गया था कि यह कर कोई कर नहीं है और इससे नमक के उपभोग पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस सभा में यह बताया गया था और मैंने स्वयं यह बात सुनी थी। मुझे बताया गया है कि इसकी खपत में कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि आप नमक पर 30 रुपए प्रति मन की दर पर भी कर लगाते हैं तो भी आदमी को नमक तो खाना ही पड़ेगा। उसे नमक पर कर देने के लिए धन की व्यवस्था करनी पड़ेगी और तब वह नमक खा सकेगा। एक दिन हम एक पत्र पर चर्चा कर रहे थे, भारत में प्रति व्यक्ति खपत 12 पौण्ड दी गई थी। न्यूनतम खपत $8^{3/4}$ पौण्ड थी। यदि मुझे ठीक से याद है तो आंकड़े यही हैं।

* * * *

मैं आशा करता हूं कि सभा का समाधान हो गया है कि मेरा प्रस्ताव सही है। यही

कारण है कि मैंने इतना लम्बा भाषण दिया है। मैं कई पहलुओं से कई तर्कों के साथ सभा का समाधान करना चाहता हूं। मैंने सभा के कार्य में बाधा पहुंचाने की कभी भी चेष्टा नहीं की और मैं किसी भी माननीय सदस्य को भाषण देते समय रोकना कभी पसन्द नहीं करता हूं।

महोदय, मैं संक्षेप में कह रहा हूं। मैं प्रति व्यक्ति खपत की बात कर रहा था। यह औसतन 12 पौण्ड और न्यूनतम $8^{3/4}$ पौण्ड थी। किन्तु जब यह नमक कर आरम्भिक अवस्था में था, उस समय सरकारी अनुमान क्या था?

जनरल जॉन क्राफोर्ड (कर्नल जे.डी. क्राफोर्ड से मेरा अभिप्राय नहीं जो यहां उपस्थित हैं) बंगाल सरकार के मेडिकल आफीसर ने नमक संबंधी प्रवर समिति (1836) को दिए गए वक्तव्य में कहाः

"बंगाल अथवा मद्रास के एक सिपाही को प्रति वर्ष 17 पौण्ड राशन मिलता है जोकि प्रति दिन 3/4 औंस है। बम्बई के सिपाही को प्रति दिन 2 औंस अथवा 45 पौण्ड प्रति वर्ष राशन मिलता है।"

यह जमीन पर दिया जाने वाला भत्ता है,

"समुद्र में 40 प्रतिशत अधिक दिया जाता है तथा साथ में खाने के लिए नमक तथा मछली भी दी जाती है।"

यह सब पिछली शताब्दी के चौथे दशक में दिया जाता था।

4

व्यापार विवाद विधेयक *

महोदय,..... वस्तुतः, यह लोक सुरक्षा विधेयक के समान ही दूसरा विधेयक है, मैं इसे,व्यापार विवाद विधेयक, इस विधेयक का एक जुड़वा भाई कह सकता हूं। पहला विधेयक अब भी अधर में लटका हुआ है, इस दूसरे विधेयक पर सभी वाद-विवाद का अनुसरण करना कुछ-कुछ सत्य पर पर्दा डालने जैसा है अथवा इसे किसी अन्य प्रकार से ऐसा ही कहा जा सकता है। जो सदस्य अब तक बोले हैं, वे इस बारे में अपने सम्पूर्ण विचार व्यक्त नहीं कर पाए हैं, जैसाकि उन्हें करना चाहिए था। वाद-विवाद के दौरान, सदैव कुछ इसी प्रकार की प्रवृत्ति देखने को मिली है, लेकिन अन्ततः रहस्य खुल ही गया है। अब कम से कम पिछले दो-तीन भाषणों से तो यह स्पष्ट हो ही गया है कि इस विधेयक का वास्तविक उद्देश्य यह है कि यदि संभव हो तो श्रमिकों को सदैव पूंजीपतियों का शान्त आज्ञाकारी सेवक बनाकर इस देश में सभी राजनैतिक आन्दोलनों को कुचल दिया जाये, मानों इस अभागी भूमि पर श्रमिकों के लिए और कुछ भी करने को नहीं है, मानों इन्हें राजनीति से कुछ भी लेना-देना नहीं है और मानों श्रमिक स्वराज नहीं चाहते हैं, तथा श्रमिक 1818 के विनियम तीन जैसा कानून चाहते हैं। सरकार शायद यह सोचती है कि चूंकि श्रमिकों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता है, अर्थात् उनका काम यही देखना है कि श्रमिकों को हमेशा आधा पेट भोजन ही दिया जाये अतः श्रमिकों की आवश्यकताओं को इस प्रकार पूरा किया जाये कि वे सदैव अपना पेट भरने के बारे में ही सोचते रहें और उससे आगे कभी सोचें ही नहीं। दूसरी ओर मेरा कहना है कि इस देश में कुछ व्यापारिक लोगों अथवा अन्य लोगों, जो स्वार्थों से जुड़े हुए हैं या जिनके निहित स्वार्थ हैं, उनकी तुलना में स्वराज के प्रश्न पर निश्चित रूप से सामान्य लोगों को अधिक चिन्ता है।

* * * *

**श्री फज़ल रहीम तुल्ला ने बताया कि श्रमिक संगठनों का उपयोग राजनैतिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है, जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती। मेरा कहना है कि आप इस

---

*केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद, 3 अप्रैल, 1929, पृ॰ 2778-83.

**एक अन्य सदस्य।

प्रश्न पर उस दृष्टिकोण से विचार करें, जिसकी इसे अपेक्षा है और देखें कि क्या इसी देश में इसका ऐसा उपयोग किया जाता है। हम लोग विचित्र रूप से परिस्थितियों में घिर गये हैं, इसके अतिरिक्त, इस प्रश्न का यहां भारत में एक विशेष महत्व है। हम लोग बातों को बढ़ायें नहीं। वस्तुतः मैं नहीं जानता कि इस देश की राजनीति में क्या नहीं है। इस देश में जीवन का मूलभूत सिद्धांत स्वतंत्र होने के लिए संघर्ष करना है। यह मेरे लिए इस सदन में उतना ही आवश्यक है जितना यह बम्बई नगर की गन्दी बस्तियों में रहने वालों के लिए आवश्यक है। फिर भी, उन्हें राहत देने तथा बेहतर सुविधाएं प्रदान करने के विचार से हम इस देश में एक अच्छी सरकार चाहते हैं, हम अपनी निजी सरकार चाहते हैं। कम से कम उस सीमा तक इस देश में सभी श्रमिक संगठन और सभी श्रमिक आन्दोलन राजनैतिक आन्दोलनों के साथ सौहार्दपूर्वक जुड़ जायें। श्रम से राजनीति को अलग समझना वैसा ही ढोंग है, जैसाकि राजनीति से श्रम को अलग समझना। ऐसा करना भारत जैसे देश में तो निकृष्ट गुलामी ही है जब कोई व्यक्ति प्रश्न के इस पहलू का समुचित अध्ययन और व्यावहारिक कार्यान्वयन करके हमारी राष्ट्रीय समस्या का समाधान ढूंढ़ना चाहेगा, तो उस पक्ष के लोग राजनीति को श्रम से अलग रखने की बात करेंगे।

कहा गया है कि राजनीति अथवा राजनीतिज्ञों द्वारा श्रमिकों का शोषण नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार का विचार रखने वाले लोगों के लिए श्रमिक तो केवल शोषण का पात्र ही रहे हैं। वे श्रमिकों के बारे में कोई अन्य विचार नहीं रखते। यह सही है कि किसी भी रूप में यह शोषण का ही एक मामला है। बात यह है कि व्यापारिक लोग तथा उनके साथ अपने स्वार्थों के कारण बंधे दूसरे लोग श्रमिकों का राजनैतिक उद्देश्यों के लिए शोषण किए जाने के प्रति आपत्ति प्रकट करते हैं। महोदय, राजनैतिक उद्देश्यों के लिए वह शोषण, यदि वास्तव में शोषण है, तो यह नितान्त वैध है। किन्तु, यह शोषण नहीं है। यह श्रमिकों को अपने हितों को समझने में इसे शिक्षित करना है। राजनीतिज्ञों के ऐसे सभी प्रयासों में केवल श्रमिकों के हितों पर ही विचार किया जाता है। किन्तु, महोदय, दूसरे पक्ष के शोषण के बारे में आपका क्या विचार है? दूसरा शोषण व्यापारिक एवं लाभ कमाने के उद्देश्यों के लिए पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण है, ताकि श्रमिकों के श्रम के मूल्य पर पूंजीपतियों की जेबें भरी जा सकें। उसी शोषण को रोकने के लिए विधेयक के इस दंडात्मक अंश का निर्माण किया गया है और यही वह शोषण है जिसका हमें विरोध करना चाहिए। हमारा यह कर्तव्य है कि किसी भी कीमत पर हमें इसका मुकाबला करना चाहिए।

महोदय, कहा गया है कि इसकी आवश्यकता नहीं है तथा इस विधेयक को पुनः परिचालित करने के कोई उचित कारण नहीं बताये गये हैं। श्री फज़ल रहीमतुल्ला ने ऐसा कहा है। दुर्भाग्य से वह इस समय यहां मौजूद नहीं हैं, किन्तु, साथ ही साथ अपना

असंतोष प्रकट करते हुए उन्होंने कहा है कि जब तक धरना देने के बारे में इस विधेयक में कोई खंड शामिल नहीं किया जाता, तब तक यह स्वीकार्य नहीं हो सकता। जहां तक मुझे जानकारी है, मूल विधेयक में यह नहीं था, यह विधेयक में नहीं है, क्योंकि यह प्रवर समिति के कहने से हुआ है, किन्तु मेरे माननीय सदस्य, श्री फजल रहीमतुल्ला इस प्रकार का संशोधन का प्रस्ताव करने जा रहे हैं। महोदय, क्या यह उचित नहीं है कि केवल इसी मसले पर राय प्राप्त की जानी चाहिए? वह अपने विरुद्ध ही बोलते हैं, वह कहते हैं कि सभी राय मौजूद हैं तथा कोई और राय आवश्यक नहीं है। किन्तु, महोदय, उन्होंने स्वयं एक बिल्कुल नये संशोधन का प्रस्ताव किया है। उनका संशोधन यह है:

> खंड 18 के पश्चात् निम्नलिखित नया खंड 19 जोड़ा जाये तथा तदनुसार बाद के खंड को नई संख्या दी जाये:—
>
> '19. जहां कोई व्यापारिक विवाद किसी न्यायालय अथवा बोर्ड द्वारा जांच अथवा अन्वेषण के अधीन हो, किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जो विवाद से सम्बंधित किसी पक्षकार नियोक्ता द्वारा नियुक्त किसी कामगार को कोई ऐसा कार्य, जिसे करने अथवा करने से विलम रहने का उसे वैध अधिकार है, करने से विलम रखने अथवा न करने देने के लिए गलत तरीके से अथवा किसी कानूनी प्राधिकार के बिना विवश करने के उद्देश्य से'. . . . . .

* * * *

संशोधन में आगे कहा गया है:—

> (क) ऐसे कामगार का जगह-जगह लगातार पीछा करता है; अथवा
>
> (ख) उस मकान अथवा अन्य स्थान पर निगरानी रखता है अथवा घेरा डालता है, जहां ऐसा कामगार निवास करता है अथवा कार्य करता है अथवा व्यापार चलाता है अथवा मौजूदा रहता है अथवा ऐसे मकान अथवा स्थान तक पहुंचता है, साधारण कैद, जो तीन महीने तक हो सकती है अथवा दो सौ रुपये तक का जुर्माना या दोनों दंड दिए जा सकते हैं।

महोदय, मुझे यह कहते हुए दुःख हो रहा है कि यह किसी भी विद्यमान उपबंध की तुलना में अधिक अशोभनीय है तथा इस विशेष संशोधन पर राय एकत्र करना आवश्यक है। लेकिन मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि जिस सज्जन ने इसका प्रस्ताव किया है, वे इस सदन में आयें और कहें कि राय प्राप्त करने के लिए विधेयक की पुनः रचना हेतु कोई मामला नहीं बनाया गया है।

मेरे माननीय मित्र, श्री के० सी० राय का सुझाव है कि वे स्वयं एक पत्रकार थे और वे सदैव इस मामले में समाचार पत्रों की राय पर निर्भर करते थे। महोदय, यदि समाचार-पत्रों ने अपनी राय दे दी है और इस समय कोई नयी राय नहीं देता है, तो शायद इसलिए क्योंकि वे कोई और राय देना उचित नहीं समझते हैं। शायद उन्होंने इस सदन के सदस्यों के विवेक पर सारा मसला छोड़ दिया है।

अतः स्पष्ट है कि आप यह चाहते हैं कि किसी भी तरह नगर की इन गन्दी बस्तियों में राजनीति की गंध तक नहीं जानी चाहिए। मैं सबसे पहले उन लोगों से जो इस प्रकार का दृष्टिकोण रखते हैं, इसे सदन को देश को स्पष्ट करने के लिए कहूंगा। यदि हम श्रमिकों के लिए कुछ अधिक मजदूरी चाहते हैं और इसे ही आम हड़ताल का मुद्दा बनाते हैं, तो मैं समझता हूं कि हमें इस मुद्दे पर देश भर में घूमने का और हड़ताल पर जाने के लिए घर-घर जाकर श्रमिकों से सम्पर्क करने का कानूनी रूप से हक है। यदि हम, राजनीतिज्ञ, देश में एक ऐसी बेहतर सरकार चाहते हैं, जो देश की आकांक्षाओं को समझती हो, यदि हम महसूस करते हैं कि हमारे श्रमिकों की स्थिति विशेष में परिवर्तन करना चाहिए, मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि राजनीति के लिए श्रमिकों का शोषण करने संबंधी तीखे आरोप लगने पर मेरठ जेल में अथवा किसी अन्य जगह बन्द होने के खतरे के बावजूद हमारा यह कर्तव्य है कि हम नगरों की गन्दी बस्तियों में घर-घर जायें और उनसे आम हड़ताल करने को कहें। किन्तु, महोदय यदि आप इस तरह की बातें रोकना चाहते हैं, तो आप हमें हमारी जनता, जो स्वराज की लड़ाई में मूल घटक हैं, उससे हमें अलग कर रहे हैं। आप यह चाहते ही नहीं है कि हमारे देश के श्रमिक-वर्ग का हमसे और हमारा उनसे सम्पर्क हो। आपका उद्देश्य अपने लाभ और सत्ता के लालच के लिए श्रमिकों को सहज शिकार बनाने हेतु उन्हें सभी अधिकारों और नागरिकता के अधिकार से वंचित रखने का है।

महोदय, इस विधेयक के निर्माता यहां आयें और हमें बतायें कि यह व्यापार विवाद विधेयक है कि व्यापार विवादों के समाधान के लिए कुछ मजदूर संघ संगठनों द्वारा मध्यस्थता बोर्ड अथवा इस तरह के किसी अन्य बोर्ड की मांग की गई थी। और महोदय, जब सरकार ने इस तरह का उपयुक्त अवसर देखा, तो इसका लाभ उठा लिया। उन्होंने अवसर देखा और अपने हितों को बढ़ाने के प्रयोजनार्थ देश में इन श्रम संघ संगठनों की मांग का लाभ उठा लिया। जैसा कि इस विधेयक की धारा 15 से 20 तक, जो पूर्णतया एक अलग भाग है, और इसमें इस तरह के व्यापार विवादों के सम्बन्ध में कोई भी उल्लेख नहीं है। यदि आप व्यापार और उद्योग को देश की राजनीति से अलग करना चाहते हैं, यदि आप इन दो बातों को एक दूसरे से अलग करना चाहते हैं, तो आप न केवल हमारी राष्ट्रीय सम्पदा को ही नष्ट कर रहे हैं, बल्कि हमारी वैध राष्ट्रीय आकांक्षाओं

का भी हनन कर रहे हैं। महोदय, मैं यह अवश्य बताना चाहूंगा कि हमारे देश की राजनीति व्यापक है और इसमें देश का जीवन झलकता है। किसी राष्ट्र के लिए यह एक ऐसी बात है जो उस राष्ट्र के जीवन में समायी हुई होती है; और एक जागृत राष्ट्र के विषय में, मैं कहता हूं कि वहां जीवन के हर क्षेत्र में कुछ और नहीं, केवल खालिस और सरल राजनीति ही होती है। मैं भारत की स्थिति के बारे में विचार नहीं कर सकता। यहां विपक्ष में बैठे मेरे कुछ माननीय मित्र भी राजनीति को अलविदा कर सकते हैं। इस देश में, श्रमिकों में, उद्योग में, कांग्रेस में और तथ्य तो यह है कि प्रत्येक मानवीय क्रियाकलापों में प्रति क्षण संघर्ष जारी है और यह संघर्ष राजनैतिक है और केवल राजनैतिक ही है। यदि आप अपने व्यापार और उद्योगों से राजनीति को अलग करेंगे, तो हम कहीं के नहीं रहेंगे। हम इस देश में रहने के योग्य भी नहीं रहेंगे। यह हमारी स्थिति है।

अब, विभिन्न दृष्टिकोणों का निष्कर्ष निकालें। मेरे मित्र, दीवान चमन लाल द्वारा पूरा विश्लेषण करने के बाद, उनका विचार है कि आपने तो अपनी बात कह डाली। तब यहां कोई कैसे कहता कि इस विधेयक को पुनः परिचालित करने की आवश्यकता नहीं है। आप चाहे इस विधेयक के सिद्धांतों को स्वीकार करें अथवा नहीं, मुझे इससे फर्क नहीं पड़ता। मैं इस तकनीकी प्रश्न पर विचार करना भी नहीं चाहता हूं। मान लिया जाये, आपने इस विधेयक के सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया, फिर भी आपको अभी अपने विचार बदलने का हक है। विधेयक पारित होने के पहले भी आपको अपने विचार बदलने का हक है। अब इससे असहमति प्रकट करने वाली टिप्पणियों को देखें। जिन लोगों ने असहमति की टिप्पणी देते हुए रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किये हैं, वे जोर देकर कहते हैं कि विधेयक को राय जानने के लिए पुनः देश की जनता के पास भेजा जाना चाहिये.....।

यह सब सुनने के बाद कहा जा सकता है कि इस विधेयक को न्यायोचित मानने के लिए चर्चा नहीं की गयी है, जिससे मुझे आश्चर्य हो रहा है। प्रवर समिति के प्रतिवेदनों के अंत में यह कहने का प्रचलन है कि विधेयक में ऐसे परिवर्तन नहीं किये गये हैं, जिससे कि इसके पुनः प्रकाशन की आवश्यकता पड़े। यहां प्रवर समिति के मुख्य प्रतिवेदन के अंत में इन दो अथवा तीन पंक्तियों में इस विधेयक पर तत्काल विचार करने के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा रहा है। मैंने इसे इस तरह के ही अन्य प्रतिवेदनों में अनेक बार उद्धृत देखा है। मैं एक आम आदमी हूं। मैं कोई वकील नहीं हूं; फिर भी मैं ऐसे कुछ विधेयकों को मान्यता प्रदान नहीं कर सका, जो प्रवर समिति के माध्यम से होकर गुजरे थे। आप मुझे एक जांच के रूप में लें, क्योंकि वकील जिन्हें प्रतिदिन कानूनी मामलों पर विचार करना होता है, वे पेचीदा मामलों को समझ सकते हैं, लेकिन मैं एक आम आदमी हूं, इसके बावजूद, जैसा मैंने कहा, प्रवर समिति से आने के बाद मैं कुछ विधेयकों को

मान्यता प्रदान नहीं कर सका। मैं नहीं जानता कि क्या मैं इस विधेयक विशेष को भी मान्यता प्रदान कर पाऊंगा। किन्तु यहां पर यह सामान्य बात है। कभी-कभी मैंने टंकण किये हुए प्रतिवेदनों पर स्वयं हस्ताक्षर किये हैं और इस सामान्य नियम का विचार नहीं किया तथा इसे एक औपचारिक बात समझा। मैंने अन्त की उन तीन-चार पंक्तियों को कोई महत्व प्रदान नहीं किया। यह भी इसी तरह का एक मामला है। जिन सदस्यों ने मुख्य प्रतिवेदन का कड़ा विरोध किया हो, उनसे मुख्य प्रतिवेदन में हस्ताक्षर करने को कहा जाता है। मुझे स्वयं इसका अनुभव है। ऐसे हस्ताक्षर को वे क्या महत्ता दे सकते हैं, और वे अन्तिम तीन पंक्तियों की परवाह क्यों करें, जो कि लगभग सभी मुख्य प्रतिवेदनों का सामान्य निष्कर्ष है? अब, इन तीन पंक्तियों पर विवाद करना बेकार की बात है।

यह क्या विडम्बना है, मैं पूरी स्थिति को नहीं समझ पा रहा हूं। हमसे कहा गया है कि राजनैतिक प्रयोजनों के लिए श्रमिकों का उपयोग न करें। इस विधेयक की कुछ धाराएं हमारे सारे राजनैतिक आन्दोलनों को समाप्त करने, भारतीय राष्ट्रीयतावाद को समाप्त करने के लिए निश्चित रूप से राजनैतिक प्रयोजनों के लिए इस प्रकार उपयोग में लाई गई है, जैसे कि राष्ट्रीयतावाद को बढ़ावा देना, न कि इसे समाप्त करना राजनीति है और मैं इस समय इन धाराओं के बारे में विस्तार से नहीं कह सकता हूं क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि सभापति महोदय मुझे बीच में ही टोक दें। इस विधेयक पर सारी कानूनी चर्चा बन्द करना यह कहते हुए लोगों की अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध लगाना है कि राजनीति को श्रम सम्बन्धी समस्याओं में सम्मिलित करने की अनुमति देना उचित नहीं है। अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध लगाने का दूसरा काम सभापति महोदय करते हैं। कल मेरे द्वारा व्यवस्था का प्रश्न उठाने के पीछे मेरा यही अभिप्राय था। सभा में, मैं तथा इस पक्ष का कोई अन्य सदस्य, इन धाराओं के प्रत्येक वाक्य के लिए जो कुछ भी कहेगा, उसे उनमें तथ्यों और परिस्थितियों का हवाला भी देना होगा, जैसे—हड़तालें कैसे आयोजित की गईं, नेता कौन हैं क्या वे कम्यूनिस्ट हैं, क्या वे विश्व के किसी अन्य भाग में श्रमिक आन्दोलन से प्रभावित हैं। इस तरह की बातों पर चर्चा होनी है और मैं नहीं जानता कि क्या सभापति महोदय इसकी अनुमति देंगे। सभापति महोदय इसकी अनुमति नहीं देंगे, किन्तु इन बातों का उल्लेख किये बिना, मैं नहीं जानता की चर्चा आगे कैसे बढ़ेगी? तब विधेयक पर क्या विचार होगा? कुछ न कह पाने की स्थिति में सभा अपने को असहाय महसूस करेगी। ऐसी चर्चा के लिए कोई गुंजाइश नहीं होगी। फिर भी जो लोग यहां हैं, ऐसा लगता है कि उन्हें सम्मोहित किया गया हो और वे इस स्वैच्छिक और जबरन चुप्पी को सरकार की ओर से सर्वोत्तम तर्क मानते हैं।

यहां जबरन चुप्पी अध्यक्ष महोदय की ओर से है। इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। यह कहना कि जहां तक श्रम संबंधी प्रश्न है, राजनीति-राष्ट्रीय

राजनीति अब तक दबी हुई है, वास्तव में सम्मोहन का प्रभाव है। राजनीति और श्रम अलग-अलग छोर हैं। ये दो अलग-अलग चीजें हैं, और भारतीय राजनीतिज्ञों को इन्हें मिलाने की अपराधग्रस्त आदतों से दूर रहना चाहिये। यह राजनीति है—वह श्रम है। मैं ऐसे बारीक विभाजन-मनोवैज्ञानिक विभाजन करने के प्रयास को नहीं समझता हूं, यह वास्तविक मुद्दे से लोगों का ध्यान हटाना है।

अतः महोदय, मेरे मित्र दीवान चमन लाल ने अच्छा मुद्दा उठाया है। विधेयक को पुनः राय जानने के लिए परिचालित किया जाना चाहिये और चाहे इस बीच विहट्ले आयोग न आए अथवा यह आये या जाये, इसका कोई महत्व नहीं है। मैं इसके पांच साल के सीमित कार्यकाल को महत्व नहीं देता हूं। वर्ष 1919 में अन्य अधिनियम ऐसे ही सीमित थे। फिर ऐसा परिसीमन, बहुत बारीक हो सकता है। मुझे यह पूर्वानुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है कि एक अधिनियम के रूप में इस विधेयक में क्या अन्तर्निहित है अथवा इसका हमारे श्रमिकों या भारत के राजनीतिज्ञों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। किन्तु इस समय मेरी स्थिति स्पष्ट रूप से यह है कि सरकार को अन्य विभिन्न तरीकों से इस विधेयक को पारित करवाने हेतु नैतिक और भौतिक रूप से लोगों की अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिये, और इस विधेयक को जनता की राय जानने के लिए पुनः परिचालित करना चाहिये। इसका अन्य और कोई उपाय नहीं है।

*** *** ***

5

गांवों में पंचायतों की स्थापना संबंधी संकल्प*

ग्राम पंचायतों की स्थापना एक ऐसा विषय है जो प्रथम दृष्टया बहुत ही आकर्षक प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें पंचायतों का उल्लेख है जो एक ऐसा नाम है जो विश्व के प्राचीन इतिहास में, विशेषकर भारत के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है और हमने अपने पुरातन कानून के अध्ययन में पंचायतों के बारे में, मेरा तात्पर्य ग्राम समाज से है, काफी कुछ सुना है। भारत में ग्राम पंचायत एक ऐसी प्रणाली के अन्तर्गत पनप रही थी जो अब प्रतिदिन नष्ट होती जा रही है। मुझे यकीन है कि बहुत से लोगों की यह धारणा है कि हम यहां किसी संविधान की रचना करेंगे जिसके अन्तर्गत हम अपनी सरकार का कार्य संचालन करेंगे। पता नहीं बहुत से लोग इस बात को भी मानते हैं या नहीं कि जिस संविधान के अन्तर्गत हम प्रशिक्षित किये जा रहे हैं, या यूं कहें कि जिससे हमें थोड़ी बहुत सहायता मिल रही है, वह देश के अन्दर से ही विकसित हो रहा है। भारत में सभी संस्थानों का विकास ग्रामों से ही हुआ है। हमारा वास्तविक जीवन ग्राम में ही मिलता था। अब वह प्रणाली पूर्णतया अस्त-व्यस्त है। आज हम जिस चीज के बारे में भी सोचते हैं, हम अपने को समुद्र पारीय देशों में प्रचलित व्यवस्था के अन्तर्गत रखकर सोचते हैं, जहां की सांस्कृतिक परम्परा हमसे बिल्कुल भिन्न है, भारत सांस्कृतिक परम्परा से, जो भारत के लिये अति उपयुक्त है, बिलकुल भिन्न है। अब हम अपने लोगों पर चीजें थोपने का प्रयास करते हैं और वह भी ऊपर से। हम प्रतिदिन पश्चिमी देशों का अनुकरण कर रहे हैं और पता नहीं हमारे देश में, जो एक व्यापक कृषि प्रधान देश है, और जहां वास्तविक जीवन अभी तक ग्रामों में ही पाया जाता है. ऐसा अनुकरण कभी आत्मसात भी किया जा सकेगा.....

केन्द्रीय कार्यालय होने चाहियें, परन्तु यहां अनेक केन्द्रीय कार्यालय हैं। केन्द्रीय कार्यालय ग्राम ईकाइयों के संश्लेषण का एक शीर्ष निकाय हो सकते हैं अथवा यह हो सकता है कि, विश्लेषणात्मक रूप से, चीजें शहरों से या केन्द्रीय स्थानों से ग्रामों पर थोपी जायें। इसी को दो प्रकार से कार्यरूप दिया जा सकता है। ठीक है, जो कुछ हो रहा है उससे बचा नहीं जा सकता। हमारे भाग्य में यही लिखा है कि आत्मसात किये बिना ही अनुकरण करते रहें, हमें भाग्य के सामने झुकना ही पड़ेगा। जहां तक ग्राम पंचायतों का सम्बन्ध है, मैं प्रस्तावकर्त्ता द्वारा प्रतिपादित संकल्प से बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुआ,

---

*केन्द्रीय विधान सभा वाद विवाद, 17 सितम्बर, 1929 पृ० 978-80

परन्तु संशोधन के समर्थन में अपने मित्र मुख्तार सिंह का भाषण सुनने के पश्चात मैं यह महसूस करता हूं कि हमें इस संकल्प को अति उत्तम बनाने का प्रयास करना चाहिये। भारत के विभिन्न प्रान्तों में विद्यमान पंचायत व्यवस्था का मैंने अध्ययन नहीं किया है। मुझे यह भी पता नहीं कि उत्तर पूर्वी सीमा प्रान्त में यह व्यवस्था है भी या नहीं, और यदि है तो किस रूप में विद्यमान है। संभवतया वहां यह व्यवस्था विद्यमान नहीं है। परन्तु उस पंचायत व्यवस्था के बारे में थोड़ा बहुत जानता हूं जिसे चौकीदारी पंचायत कहा जाता है और जो उस प्रान्त में मौजूद है जिसे इस सदन में मुझे औपचारिक रूप से अपना प्रान्त कहना चाहिये। ..... मुझे आशा थी कि इस प्रान्त के प्रतिनिधि रायबहादुर श्याम नारायण सिंह इस विषय में कुछ कहेंगे परन्तु दुर्भाग्य से उन्हें हमको जानकारी देने की चिन्ता नहीं है जबकि इस समय इसकी आवश्यकता है। फिर भी मैं बिहार में बहुत समय से विद्यामन चौकीदारी ग्राम पंचायत व्यवस्था के बारे में थोड़ा बहुत जानता हूं। यह एक दिखावा मात्र है, एक योजनाबद्ध व्यवस्था है जिसे कृत्रिम रूप से उन लोगों ने बना रखा है जो भारतीय जीवन और संस्कृति को समझने का कभी प्रयास नहीं करते। अब भारत में राजनैतिक जीवन पनपने के साथ ग्राम पंचायत व्यवस्था जासूसी को एक संगठित प्रणाली मात्र रह गई है। जासूसी की इस व्यवस्था को चौकीदारी करदाता की लागत प्र चलाया जा रहा है। ग्रामवासी कर देता है परन्तु अनिच्छा से। वह केवल इतना जानता है कि यह व्यवस्था नये कर देने के लिये ही है। वह इनका भुगतान घरेलू सामान की कुर्की, जो कर अदायगी न करने पर अकसर की जाती है, जैसी कठिनाई और परेशानी से बचने के लिये करता है। वह कर देता है और केवल इतना ही वह ग्राम पंचायत व्यवस्था के बारे में जानता भी है। .....यह भी सच है कि पंचायत की नियुक्ति, कानून के अन्तर्गत यह चाहे जिस किसी का भी कर्तव्य हो, जिलाधीश द्वारा नहीं की जाती अपितु किसी नये डिप्टी मजिस्ट्रेट अथवा सब-डिप्टी कलेक्टर द्वारा जैसा कि इन्हें हमारे प्रान्त में कहा जाता है, की जाती है। व्यवहार में जो कुछ होता है मैं उसकी बात कर रहा हूं।

*** *** ***

वह जाता है और एक रिपोर्ट देता है कि ग्रामवासियों में अमुक-अमुक व्यक्तियों को पंचायत के लिये चुना है, जबकि ग्रामवासियों को इसके बारे में कुछ भी पता नहीं होता कि उन्हें पंचायत के लिये व्यक्तियों का चयन करने का कोई अधिकार भी है। चौकीदारों को वास्तव में स्थानीय पुलिस द्वारा नियुक्त किया जाता है। नये डिप्टी कलेक्टर अथवा सब-डिप्टी कलेक्टर की स्वीकृति में ग्रामवासियों का, जो इन चौकीदारों के लिए कर देते हैं, कुछ लेना-देना नहीं है। एक बार वास्तव में ऐसा हुआ कि एक ग्रामवासी के खेत से उसकी फसल चुरा ली गई। वह पुलिस के पास गया और शिकायत की कि चौकीदार ने निगरानी नहीं रखी। उसे कहा गया कि चौकीदार खेतों की फसल की रखवाली नहीं करते,

वे मोहल्ले की रखवाली करते हैं। जब मोहल्ले में कोई चोरी होती है तो पता नहीं चौकीदार को कितना कुछ दिया जाता है और उसके माध्यम से थाने की पुलिस को भी कितना ताकि पुलिस की जांच आदि के कारण ग्राम में और कोई मुसीबत खड़ी न हो।

इस प्रकार मेरा निवेदन है कि आप पुराने ग्राम्य जीवन की व्यवस्था को भंग कर रहे हैं। जब ऐसी स्थिति है तब यह भलीभांति सोचा जा सकता है कि मुकदमों की संख्या क्यों बढ़ रही है। गांवों में पार्टियां और दल बन रहे हैं और प्रत्येक घर में पुलिस राज्य क्यों हैं। इसलिये हमारी नयी ग्राम पंचायत ग्राम समाज की सुन्दर व्यवस्था पर आधारित होनी चाहिये जिसके अवशेष आज भी खोजे जा सकते हैं। आज भी यदि आप हमारे गांवों में जायें और पुरानी ग्राम समाज व्यवस्था की ओर देखें तो आप क्या पायेंगे? गांवों में चरागाहों सहित समुदाय की भूमि है और ऐसी भूमि आज भी वहां मौजूद हैं जिन्हें न तो किसी कानून के संरक्षण की आवश्यकता है और न ही कोई व्यक्ति, जमीदार अथवा कोई बड़ा व्यक्ति उस पर अनधिकृत कब्जा भी कर सकता है। चरागाह अब नहीं रहे और गांवों की सुन्दर सिंचाई व्यवस्था भी अब पूरी तरह मिट चुकी है। कोई ग्राम पंचायत इसकी देखरेख नहीं करती। यह उनका कार्य नहीं है। आप जानते हैं कि वर्तमान सिन्ध, असम और ऐसे ही कई अन्य स्थानों की भांति उड़ीसा भी बाढ़ के मामले में कुछ ही प्रान्तों से पीछे होगा। परन्तु क्या आप जानते हैं कि उड़ीसा में गांव बाढ़ के पानी में किस प्रकार डूबते हैं। ऐसा इसलिये होता है कि ग्राम समुदायों की समयबद्ध व्यवस्था से संरक्षित सिंचाई की पुरातन प्रणाली अब त्याग दी गई है। कोई भी सदस्य, जिनकी रुचि हो, मेरे साथ आयें मैं उन्हें अपने गांव दिखाऊंगा और वह पायेंगे कि पुरानी व्यवस्था कितनी उपयुक्त थी और उन पुश्तों और नहरों की, जो आज भी वहां है और प्राचीन काल के अवशेष स्वरूप बचे हैं, उपेक्षा की गई हैं अथवा उन्हें खराब कर दिया गया है। वर्तमान ग्राम चौकीदारी व्यवस्था के अन्तर्गत इन सभी को त्याग दिया गया है। गावों में सफाई अथवा शिक्षा की और कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। जैसाकि मैंने कहा है, यह केवल पुलिस जासूसी की व्यवस्था है। हम जानते हैं कि जिलें में चौकीदारों की पूरी एक सेना है। जब कभी कोई गवर्नर या कोई अन्य बड़ा अधिकारी आता है तब ये गांव चौकीदार दिन-रात रेलवे लाईन की निगरानी रखते हैं, पता नहीं जब ऐसे अधिकारी गांव में आते हैं तब मौहल्ले की और गांव के घरों की निगरानी के लिये क्या व्यवस्था है क्योंकि गांवों में कई दिन के लिये चौकीदार नहीं होता है। स्थानीय सरकारों द्वारा बनायी गयी चौकीदारी पंचायत का यही लाभ है। मैं जानता हूं कि हमें अपने इन राष्ट्रीय संस्थानों के माध्यम से ही राष्ट्रीय जीवन के इस पहलू को विकसित करना चाहिये। केन्द्रीय सरकार को उस ग्राम पंचायत व्यवस्था को विकसित करने में रुचि लेनी चाहिये न कि उस व्यवस्था को जिससे गांव के घरों में जासूसी की जाती है और जो ग्राम्य जीवन तथा संगठन को नष्ट करती है। यह व्यवस्था ऊपर से नहीं थोपी जानी चाहिये संस्थानों का

विकास अन्दर से ही होना चाहिये और हमारे आगामी संविधान में इसका संश्लेषण किया जाना चाहिये।

मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि गणपूर्ति कम नहीं है और मैं अनुरोध करता हूं कि केन्द्रीय सरकार, यदि इसका स्थान राष्ट्रीय सरकार लेगी, ऐसे स्थानों पर ग्राम समुदायों की सुन्दर व्यवस्था में रुचि ले जहां की जनता पूर्णतया कृषि पर निर्भर है और जहां आसानी से औद्योगिक नगर नहीं बनेंगे और हमारी संस्कृति और संरचना के वातावरण में परिवर्तन नहीं लायेंगे। अतः मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और सिफारिश करता हूं कि केन्द्रीय सरकार ग्राम समुदायों में रुचि लें।

6

बाल विवाह प्रतिरोध (संशोधन) विधेयक*

मैं इस सभा और प्रवर समिति का भी एक सदस्य था जब श्री हर विलास शारदा का विधेयक बाल विवाह प्रतिरोध (संशोधन) विधेयक 1929 पारित हुआ था। मैं जानता हूं कि एक निश्चित निर्णय तक पहुंचने में लगभग तीन वर्ष का समय लग गया। ऐसा नहीं कि विधेयक का प्रारूप अच्छा नहीं था। ऐसा इसलिए था क्योंकि देश में विधेयक के लिए ऐसा बहुमत नहीं था जो जिस प्रारूप में विधेयक बनाया गया था, उससे सहमत था। अन्ततः यह निर्णय लिया गया कि अधिनियम में केवल सामाजिक दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित होना चाहिए और इसका प्रारूपण इस ढंग से होना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति अपने लड़के या लड़की का विवाह कम उम्र में करता है तो किसी किस्म का सामाजिक उत्पीड़न न हो सके। व्यवहार्यतः अधिनियम में ऐसा किया गया था और अब लगभग नौ वर्षों के बाद सुधार करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। विधेयक में कुछ उपाय बहुत सख्त हैं किन्तु सरकार के उत्तर से यह जान कर मैं प्रसन्न हूं कि वे विधेयक के बहुत से अनमीष्ट प्रावधानों के विरुद्ध हैं। सबसे पहले तो सरकार व्यवहार्यतः इसमें प्रस्तावित निषेधाज्ञा के विरुद्ध है।

व्यक्तिगत रूप से मैं समझता हूं कि ऐसी निषेधाज्ञा से कठिनाई पैदा होगी। दूसरी बात सम्बन्ध विच्छेद से है। ऐसे उपायों में आर्थिक प्रयोजन भी शामिल हैं और यह संगत है कि वर्तमान परिस्थितियों के अंतर्गत यदि सरकार लड़की की देखभाल के लिए व्यवस्था करने के लिए तैयार नहीं है तो मैं इससे सहमत हूं कि अन्य बातों को देखते हुए इस प्रकार के उपबंधों को कानून नहीं बनाना चाहिए।

प्रश्न यह है कि क्या शिकायत किसी व्यक्ति द्वारा की जाएगी अथवा अन्यथा न्यायालय इसमें हस्तक्षेप करेगा। न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। यह बहुत कम सुधार है और

---

*बाल विवाह प्रतिरोध अधिनियम, 1929 को संशोधित करने वाले विधेयक को प्रवर समिति को भेजा जाए..." प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान बोलते हुए। केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद, 10 फरवरी, 1938, पृष्ठ 522-25।

व्यवहार्यतः यदि कुछ सुरक्षोपाय हैं तो वर्तमान अधिनियम शारदा अधिनियम के समान ही अच्छा अथवा बुरा होगा।

वास्तव में मैं कोई कड़ा विधेयक नहीं चाहता हूं बल्कि मैं चाहता हूं कि इस चरण पर हमें अपनी परंपराओं के लिए कट्टर नहीं होना चाहिए। मेरे विचार इससे भिन्न हैं। मेरे विचार में यदि हम अत्यधिक उत्साह के कारण वर्तमान अधिनियम में आमूल चूल परिवर्तन नहीं करते हैं तो इन परिस्थितियों में हम यह उत्कृष्ट कार्य करेंगे। हम व्यवहार्यतः इसे वैसा ही रखेंगे। अतः इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मैं विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने का समर्थन करता हूं।

लेकिन युवा पत्नियों और राष्ट्र के व्यक्तियों के स्वास्थ्य से संबंधित आंकड़ों के बारे में अनेक अनावश्यक बातें कहीं गई हैं। वे न केवल विवादास्पद हैं बल्कि इस विधेयक के लिए असंगत भी हैं। यदि यह बातें देश की भलाई के लिए सहायक हैं तो अन्य अनेक बातें भी देश की भलाई के लिए सहायक हैं। उन्हें सांविधिक उपबंधों द्वारा विनियमित करना संभव नहीं है। फिर इस मुद्दे से चिकित्सक सहमत नहीं है। मैंने बाल विवाह के पक्ष में प्रसिद्ध चिकित्सकों की राय पढ़ी है जिसमें उन्होंने यह बताया है कि संतान-उत्पत्ति के लिए लड़की की आयु क्या होनी चाहिए। अब इसका कृषि विज्ञान में भी उल्लेख किया गया है... यह सुस्थापित राय है और जैसा कि कृषि वैज्ञानिक भी बताते हैं कि यदि पौधा जल्दी फल देने लगता है तो वह अधिक समय तक हरा-भरा रहेगा। हमें यहां इन अति विवादास्पद मामलों पर विचार नहीं करना चाहिए। महोदय, मेरे अपने प्रांत में संबलपुर में गर्भवती माताएं जन्म से पूर्व ही अपने बच्चों के विवाह तय कर देती हैं। अभी भी उस जिले में यही परंपरा है। इसके बावजूद बाल विवाह से उत्पन्न संतान बलवान और दीर्घायु वाली, बलिष्ठ शरीर की और बहुत सुंदर होती हैं। इसके विपरीत उड़ीसा के तटीय जिलों में जहां आम तौर पर विवाह की आयु यौवनारम्भः वयः सन्धि उपरान्त की होती है वहां उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता है और उनकी सन्तान इतनी बलवान और तेजस्वी नहीं होती है। इस बात को स्वीकार करते हुए कि बड़ी आयु में विवाह हमारे गांवों के लोगों के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है तो क्या हमें इसे उनमें कानून बनाकर लागू करना चाहिए। राष्ट्र के व्यक्तियों का स्वास्थ्य कुनेन देने तथा टीके लगाने आदि से सुधरता है। लेकिन क्या हमें इसे कानून द्वारा लागू करना चाहिए कि मलेरिया ग्रस्त क्षेत्र में जो व्यक्ति कुनेन नहीं लेता है उसे चार माह के लिए जेल में डाल दिया जाए? यह विधायी कट्टरता होगी, ऐसे मामलों में विधायक को सिर्फ मार्गदर्शन करना चाहिए।

*** *** ***

यहां यह बात करने की आवश्यकता नहीं है कि सृष्टि की रचना के प्रारंभ से ही यह

देखने में आया है कि इतिहास में और सभ्यता में पुरुषों का व्यवहार स्त्रियों के प्रति क्रूर रहा है। **(व्यवधान)** उस आधार पर हमें इस प्रकार का अधिनियम बनाने की आवश्यकता नहीं है। हमें यह जांच करनी चाहिए कि कौन किसके प्रति क्रूर रहा है? पुरुष स्त्रियों के प्रति क्रूर रहा अथवा स्त्रियां पुरुष के प्रति क्रूर रहीं? जैसा कि अन्य मानव संस्थाओं में होता है इसी प्रकार विवाह संस्था में अब हैसियत से अनुबंध तक प्रगति हुई है। शुरू में हैसियत क्या थी? विवाह का अनुबंध के रूप में विकास कैसे हुआ? हमें यह याद रखना चाहिए कि बहुत से विख्यात मानव विज्ञानियों की यह राय है कि ऐसा भी समय था जब पुरुष और स्त्री दोनों को ही इस बात की जानकारी नहीं थी कि उन दोनों के समागम से अर्थात यौन संपर्क में आने से बच्चा पैदा होता है। उनके लिए यौन क्रिया सिर्फ एक क्रिया थी जैसे मूत्र, शौच के लिए जाना या दूसरे कार्य करना। काफी समय तक यह पता ही नहीं था कि इस प्रकार के यौन क्रिया से महिला बच्चे को जन्म देती है अथवा गर्भ धारण करती है। वे इस बात को नहीं जानते थे। धीरे धीरे लम्बे समय के अनुभव और ध्यान देने से उन्हें इस बात की जानकारी हुई कि यौन क्रिया करने से गर्भाधान होता है। इस प्रकार प्राचीन मानव समाज इन चरणों से होकर गुजरा है। अनेक मानव विज्ञानियों का यह मत है कि स्त्री को ही बच्चे की देखभाल करनी पड़ती थी तथा बच्चे के लिए जिम्मेदार पुरुष बच्चे की देखभाल के लिए वहां नहीं होता था। यहां तक कि उसके बारे में कुछ पता भी नहीं होता था। घर में मातृ-प्रधान परंपरा प्रचलित थी और इसी प्रकार का समाज बना। आज भी विश्व में इस प्रकार के परिवार और समाज कायम हैं। फिर कुछ समय के बाद अनुबंध जिसे हम आजकल विवाह कहते हैं ने इसका स्थान लिया क्योंकि स्त्री ने पुरुष से कहा कि मेरे इस बच्चे के लिए आप जिम्मेदार हैं, आप इसकी जिम्मेदारी से कैसे भाग सकते हैं? आप मुझसे विवाह कीजिए और मेरे बच्चों की जिम्मेदारी संभालिए''। तब पुरुष ने स्त्री से कहा कि ''यह सब क्या है? मैं इन बच्चों की जिम्मेदारी क्यों लूं। मुझे क्या पता कि यह बच्चे मेरे हैं? तुम्हें मुझे इस बात की गारंटी देनी होगी कि तुम्हारे बच्चे मेरे हैं।'' इस प्रकार यह अनुबंध का सार है। जिसमें से विवाह संस्था का उद्भव हुआ। महोदय, पुरुष को प्रकृति के अन्य प्राणियों के समान प्रजनन कार्य करना है। वह तो स्वभाव से ही स्वतंत्र है। ऐसा स्वतंत्र है जैसा पक्षी होता है। स्त्री के लिए वह विवाह और घर से बंध जाता है। इस अनुबंध में पुरुष ने अपनी स्वतंत्रता का उस स्त्री के लिए परित्याग कर दिया है। अतः इस विधेयक पर चर्चा में इन विवादास्पद प्रश्नों के लिए कोई स्थान नहीं है और इसी प्रकार पुरुष और स्त्री को समान स्तर दिए जाने के बारे में भी इसमें कोई स्थान नहीं है। समानता का अर्थ एकरूपता नहीं है। जब प्रकृत्ति ने ही हमें अपनी व्यवस्था में क्रियात्मक एकरूपता नहीं दी है तो नारी पुरुष में बराबरी कैसे आएगी जिसके लिए महिलाओं का पक्ष लेने वाले अनेक व्यक्ति, शोर मचाते हैं। परंतु हमें इस प्रकार के विधेयक में इन बातों पर चर्चा नहीं करनी चाहिए।

अतः मेरा सुझाव है कि इस प्रकार के साधारण विधेयक में इस प्रकार की बातों पर असंगत चर्चा नहीं की जानी चाहिए। कुछ महिलाओं ने यह राय दी है कि हम नहीं जानते हैं कि क्या वे प्रतिनिधि महिलाएं हैं या नहीं। हमें निष्पक्षता से यह विचार करना चाहिए कि क्या उपाय सही होगा। हम जन-प्रतिनिधि हैं और हमें देखना चाहिए कि क्या यह हमारी बहुसंख्यक जनता के लिए सुविधाजनक होगा, हमारा मार्गदर्शन केवल इसी आधार पर होना चाहिए। लेकिन हमें सदैव याद रखना चाहिए कि हम सांस्कृतिक कट्टरता से प्रेरित न हों। हमें इस बात पर जोर नहीं देना चाहिए कि इन-इन उपायों से हमारी जाति, देश का उद्धार होगा, यह हो सकता है कि हम में से अधिकांश ऐसे विश्वास से प्रेरित हों लेकिन क्या संगीन की नाक पर देश में इसे लागू किया जाना चाहिए? हमारे सभी भाषणों और वार्तालापों में यह प्रवृति दिखाई देती है कि हम किसी न किसी प्रकार से यह अनुभव करते हैं कि हम अपनी सांस्कृतिक उत्कृष्टता से अथवा हमारा विश्वास है कि हम संस्कृति के ऊंचे चरण पर पहुंच गए हैं, इसलिए अमुक बात से हमारी जाति का उद्धार होगा। तब हमें कट्टरपंथियों की भांति इसे राष्ट्र पर थोपना चाहिए। लेकिन हमें समझना चाहिए कि हम प्रतिनिधि हैं। प्रवर समिति को यह याद होना चाहिए कि ऐसा कोई कदम उठाया जाए जिससे धर्मान्तर संस्कृति थोपनी पड़े। ऐसी संस्कृति जो दूसरों को शिक्षित किए बिना अथवा बिना किसी तर्क के उनका धर्म परिवर्तन करे। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्मांतरण एक क्रूर कदम है। इसके अलावा धर्म परिवर्तन दासता भी है और उस सभ्यता के अंतर्गत मनुष्य का विकास नहीं हो सकता है। इस मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ उन्हें प्रवर समिति और इस सभा में ऐसे उपाय अपनाने चाहिए। इस विधेयक पर सरकार के भाषण के बाद मुझे आशा है कि यह उपाय विद्यमान अधिनियम का आवश्यक स्वाभाविक रिणाम होगा और मैं इसका समर्थन करता हूं।

7

रेलवे बजट और भारतीय उद्योगों का विकास*

महाशय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"रेलवे बोर्ड शीर्षक के अंतर्गत मांग की राशि में से 100 रुपये कम किये जायें।"

यह एक बहुत पुराना प्रश्न है और व्यवहारतः लगभग प्रतिवर्ष होता है। मैं भारतीय उद्योगों के विकास संबंधी क्रय-नीति पर चर्चा करने जा रहा हूं। महोदय, हमारी रेल एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है। मुझे पता नहीं कि वह वस्तुतः एक बिक्री योग्य वस्तु है। फिर भी हमने अभी सुना है कि ब्रांच लाईनों को तोड़कर उसे विदेशों में बेच दिया गया है। उस हद तक और उस माने में वह राष्ट्रीय-सम्पत्ति हो सकती है। लेकिन जब तक राष्ट्र को सामान बनाने तथा उसका उपयोग करने की कुशलता प्राप्त नहीं हो जाती तब तक वह राष्ट्रीय सम्पत्ति का अंग नहीं बन सकता है। जहां तक उसके उपयोग का संबंध है कुशलता सेवाओं से जुड़ी है। इसका अर्थ है कि प्रमुख स्थानों और तकनीकी पदों पर भारतीयों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए। परन्तु प्रश्न का यह पहलू—चर्चा का विषय नहीं है। मैं केवल इस पर चर्चा कर सकता हूं कि किस प्रकार इस सामान को भारत में बनाने हेतु कुशलता प्राप्त करने के काम को कभी भी गंभीरता से नहीं लिया गया और प्रतिवर्ष जितना टाला जा सकता था टालने की कोशिश की गई।

महोदय, मैं स्टोर्स डिमार्टमेंट पर मामूली टिप्पणी के साथ सीधे आंकड़े पर आऊंगा जो स्वयं ही सारी स्थिति स्पष्ट कर देंगे। उन दिनों के प्रारंभ में जब मांटफोर्ड सुधारों पर विचार किया जा रहा था, भारतीय उद्योगों के प्रति बहुत सदश्यतापूर्ण दृष्टिकोण रखते हुए एक औद्योगिक आयोग का गठन किया गया था। उसकी एक मुख्य देन है इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट। पता नहीं यह इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट प्रत्यक्षतः अथवा किसी नियोजित ढंग से भारतीय उद्योगों के संवर्धन के लिए वस्तुतः क्या करता है। मैं नहीं कह सकता कि यह अपने नाम के अनुरूप भारतीय सामान की कितनी खरीद करता है। इस विभाग को

*रेलवे बजट पर चर्चा में भाग लेते हुए—मांगों की सूची, केन्द्रीय विधान सभा—वाद-विवाद 26 फरवरी, 1941, पृ॰ 716-19

भारतीय उपभोग के लिये देश अथवा विदेश से सामान खरीदना होता है। हाल में एक नया सुधार किया गया है और ऐसा कहा गया है कि यह बहुत बड़ा सुधार है कि विभाग रुपया निविदायें आमंत्रित करे। यही एक ऐसा महत्वपूर्ण उपाय है जिससे अधिक से अधिक भारतीय सामान खरीदा और तेजी से खरीदा जा सकता है और हम पाते हैं कि चूंकि विदेशियों के लिए रुपये के आधार पर निविदायें देना बहुत आसान है, इसलिये इससे विदेशी खरीद वस्तुतः बहुत ही आसान हो गई है। महोदय, इस रेल प्रशासन संबंधी रिपोर्ट में हमें हर साल एक सूची दी जाती है जो इस वर्ष की रिपोर्ट के भाग-एक के पृष्ठ 83 पर है। इससे पता चलता है कि प्रत्येक वर्ष इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट से कितनी खरीद की गई। ऐसा लगता है मानो इससे सभा इस बात से संतुष्ट हो जायेगी कि भारतीय उद्योगों को उसी प्रकार विकसित किया जा रहा है जैसाकि किया जाना चाहिये किन्तु स्टोर्स डिपार्टमेंट से खरीद का अनिवार्यतः यह आशय नहीं है कि भारतीय विनिर्माताओं से ही माल खरीदा जा रहा है।

जहां तक रेलवे की खरीदों का संबंध है मैं यह बता दूं कि 1924 से इस सभा में यह मांग की जाती रही है कि इन खरीदों का केन्द्रीकरण किया जाये ताकि सभा और इस विषय में इच्छुक कोई भी व्यक्ति तत्काल यह जान सके कि खरीद कैसे की जाती है। किन्तु अब तक ऐसा नहीं किया गया। इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट की कुछ भी खूबियां क्यों न हों, किन्तु अभी तक वहां खरीद का केन्द्रीकरण नहीं किया गया है। हमें बताया गया है कि कंपनी ने रेलवे से ठेका इन शर्तों पर प्राप्त किया कि उसे उसके विभिन्न ठेकों के लिये इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट से खरीद करने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा। इस तरह वे अपनी खरीद करने के लिये स्वतंत्र है। फिर भी इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट से उसकी खरीद 1 प्रतिशत से बढ़कर 3 प्रतिशत हो गई। जाहिर है कि उन्हें ऐसी एजेंसियां मिल गई हैं जिनकी मार्फत वे शेष खरीददारी करते हैं और वे तब तक ऐसा कर सकते हैं जब तक कि स्वयं उन्हें सरकार द्वारा नहीं खरीद लिया जाता। किन्तु राज्य द्वारा संचालित रेलवे की क्या स्थिति है? उनके मामले में भी काफी सामान अन्य एजेंसियों की मार्फत खरीदा जाता है। समीक्षाधीन वर्ष के दौरान वे इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट की मार्फत नहीं, किन्तु स्वयं रेलवे बोर्ड से ही अपनी 38 प्रतिशत खरीद कर सके। फिर दूसरी चीजों की खरीद के लिये रेलवे में कोई और एजेंसी होनी चाहिये। इसलिये हमें यह जरूर पता लगना चाहिये कि उन्हें किन वस्तुओं की स्वयं खरीद की अनुमति होनी चाहिये और रेलवे बोर्ड द्वारा क्या चीजें खरीदी जाती हैं और क्यों? जब सभी खरीदों के लिये इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट है, तो रेलवे बोर्ड खरीददारी क्यों करे और यदि रेलवे बोर्ड द्वारा इतनी अधिक वस्तुओं की खरीद की जाती है तो इंडियन स्टोर्स डिपार्टमेंट की क्या आवश्यकता है। खरीद का केन्द्रीकरण किया जा सकता है। प्रशासन रिपार्ट को ऐसा स्पष्ट विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहिये जिसमें पूर्णतः स्वेदश निर्मित वस्तुयें जैसे रेलों, शायिकाओं पुल सामग्री आदि का विवरण दिया हो

और यह स्पष्ट किया गया हो कि कैसे और किस सीमा तक धीरे-धीरे अधिक खरीद भारतीय विनिर्माताओं से की जा रही है।

हमारे पास कुछ आंकड़े हैं जिनके लिये मेरे माननीय मित्र रेलमंत्री का धन्यवाद किया ही जाना चाहिये। अब मैं यह दिखाऊंगा कि कितने गुमराह करने वाले सुझाव दिए जाते हैं। उदाहरणार्थ, वे कहते हैं कि खरीदे गए "स्वदेशी माल" की कीमत 95 लाख बढ़ गयी जबकि "आयातित माल" की कीमत 8 लाख घटी। यह बात इस वर्ष हुई जिसके बारे में बात की जा रही है। जब मैं मेरे हाथों में विद्यमान रिपोर्ट के संदर्भ में यह वर्ष कहता हूं तो इसका अर्थ 1939-40 लिया जाना चाहिए। "आयातित माल" की खरीद में 8 लाख रु० की कमी आयी। किन्तु इससे वास्तविक स्थिति स्पष्ट नहीं होती है। राज्य द्वारा प्रबंधित रेलवे के आंकड़ों पर सिर्फ दृष्टिपात करिए। इसमें तीन लाख और हैं। हो सकता है इसका कोई स्पष्टीकरण हो। हो सकता है कि युद्ध की परिस्थितियों का पूर्वानुमान करते हुए कुछ स्टोर सामग्री पहले ही खरीद ली गयी हो और इसलिए कुछ वृद्धि हुई। किन्तु यह केवल सत्य का आभास देने वाला तर्कसंगत स्पष्टीकरण हो सकता है। जहां तक कम्पनी द्वारा प्रबन्धित रेलवे का संबंध है, इसमें 11 लाख की कमी क्यों आयी? वे और अधिक माल खरीदने के इच्छुक क्यों नहीं थे? यह सुझाव भी दूसरे ढंग से गुमराह करने वाला है। कम्पनी तथा राज्य दोनों द्वारा प्रबन्धित रेलवे को एक साथ लेने पर पता चलता है कि केवल इसी वर्ष यह पिछले वर्ष से 8 लाख रुपये कम है। किन्तु पूरी सूची पर दृष्टिपात कीजिए? यह कम कब था? यह 1932-33 से प्रतिवर्ष वस्तुतः बढ़ा दी है। राज्य द्वारा प्रबन्धित रेलवे के मामले में आरंभ में अर्थात् 1932-33 में यह 234 लाख रु० था, फिर अगले वर्ष यह 257 लाख रु० था, फिर 262, फिर 313, 363, 322, 342 और 1939-40 में यह 345 लाख रुपये हो गया। व्यवहार्यतः यह प्रतिवर्ष बढ़ता रहा। इसी तरह यदि आप कंपनी द्वारा प्रबन्धित रेलवे को लें तब भी ऐसा ही है। आयातित खरीदों की यह मद 1932-33 में बढ़नी शुरू हुई और 1939-40 में अब यह 297 लाख है। वर्ष 1931-32 पर नजर डालिए। यह 150 करोड़ की योजना के वर्षों से बहुत मिलती जुलती है जब आयातित खरीदें। केवल की भांति खरीदी गयी थी और वैगनों के वैगन और अन्य स्टोर तथा संयंत्र व मशीनरियों में माल सड़ता रहा और रद्द किया गया। उस वर्ष आयातित खरीद की राशि 217 लाख रु० थी और अब इस वर्ष यह 297 है। पिछले ही वर्ष यह 307 थी। बाकि सब वर्षों में यह कम थी। निश्चित रूप से यह प्रतिवर्ष बढ़ रही है।

फिर हमें बताया गया है कि कम्पनी द्वारा प्रबन्धित रेलवे के मामले में सीधी आयातित स्टोर की कीमत 1938-39 में 155 लाख रु० से घटकर 1939-40 में 137 लाख रु० हो गयी। विवरण कितना गुमराह करने वाला है? मैं नहीं जानता कि इस तालिका में इतना

गुमराह करने वाला विश्लेषण क्यों दिया गया है। इसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। स्टोर्स खरीद के विश्लेषण में हमारे पास दो कालम हैं, एक कालम में सीधे विदेशों से आयातित स्टोर्स के बारे में दिया गया है और दूसरे में भारत में खरीदे गए स्टोर्स का विवरण है। वे कर दाता या रेलवे बोर्ड या भारतीय उद्योग के बीच क्या अंतर करते हैं। शायद आपके पास कुछ एजेंट्स हैं जिनसे आप बाहर से खरीदने के लिए कहते हैं और आप उन्हें कुछ कमीशन देकर उनसे खरीदते हैं। क्या इससे कुछ फर्क पड़ता है। यदि कुछ पड़ता है तो वह अन्तर यह है कि आप कमीशन देने के कारण भुगतान अधिक करते हैं। यदि आप ऐसा न करें तो कोई अन्तर नहीं पड़ता है। किंतु काफी लम्बे समय से ये दो कालम विश्लेषण करते समय दिखाई देते हैं। आप सुझाव देते हुए यह कह रहे हैं कि "सीधे विदेश" से खरीदे गए स्टोर्स 157 लाख रु० से घटकर 137 लाख रु० हो गए। इसका कुछ मतलब नहीं है। आयातित खरीदों के लिए एक अन्य कालम है जिसे सीधे आयात के लिए जोड़ा जाना चाहिए और फिर यह देखा जाना चाहिए कि क्या कोई कमी या वृद्धि हुई है। ऐसी महत्वपूर्ण सारणी और ऐसे विश्लेषण में ऐसी भ्रामक बातें नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए जब आप पाते हैं कि पिछले वर्ष राज्य प्रबन्धित रेल द्वारा 10,000 रु० के सामान की सीधी खरीद की गई थी तो आप उससे क्या समझते हैं? राज्य प्रबन्धित रेल द्वारा की गई वास्तविक खरीद 352 लाख रु० की थी। जब उन्होंने विदेशों से आयातित 352 लाख रु० मूल्य के भण्डारों की खरीद की, तब जहां तक राज्य प्रबन्धित रेल का संबंध है उसने विदेशों से सीधे 10,000 रु० मूल्य के सामान का आयात किया है। अतएव, सीधे आयात किए गये भण्डारों के आंकड़े भ्रामक हैं। इसके स्थान पर यह कहा जा सकता है कि सभी विदेशी भण्डारों का सीधे आयात किया जाना चाहिए। आयातित भण्डारों की खरीद में किसी मध्यस्थ को नहीं रखा जाना चाहिए। अन्य खामियों के अतिरिक्त, इस तरीके से स्वदेशी भंडारों के हितों को निश्चित रूप से हानि पहुंचती है।

महोदय, मेरा कहना यह है कि विस्तृत विश्लेषण होना चाहिए। पूर्ण स्पष्टीकरण दिया जाना चाहिए और यह देखने के लिए कि भारत में उत्पादित वस्तुओं की वर्ष प्रति वर्ष अधिकाधिक खरीद हो, एक तन्त्र बनाया जाना चाहिए। मैं माननीय सदस्यों का ध्यान प्रश्न के इस पहलू की ओर आकृष्ट कर रहा हूं ताकि वह नियोजित और सचेष्ट तरीके से इस देश की राष्ट्रीय सम्पदा में वृद्धि हेतु कदम उठा सकें।

8

देश के संसाधनों का उपयोग*

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं: "कि कार्यकारी परिषद शीर्षक के अंतर्गत मांग की राशि में से 100 रु० कम किए जाएं।"

महोदय, जहां तक देश के संसाधनों के उपयोग का प्रश्न है, मुख्यतः राष्ट्रीय रक्षा के प्रयोजनों से तथा राष्ट्रीय पुनर्निमाण के प्रयोजनों से भी सत्तारूढ़ दल के सदस्यों का दृष्टिकोण परम्परागत रूप से संकुचित रहा है। मैं इस मामले में अपने कुछ पिछले अनुभवों का उल्लेख करूंगा। हमने अपनी वस्तुओं के प्रयोग के लिए हमेशा इंग्लैंड की ओर देखा है यहां तक कि लम्बे समय से हमारा दृष्टिकोण ब्रिटिश मानक विनिर्देशों के अनुसार रहा है। हमें इस सभा में प्रायः यह बताया गया है कि दूसरे देशों के मानक विनिर्देश बेकार हैं केवल ब्रिटिश मानक ही वास्तविक मानक हैं, जो भारत के पास होने चाहिए। पिछले दिन यह कहा गया था जब आवश्यकता पड़ी तो यहां तक कि बंदूक की नली बनाने के लिए भी भारत में इस्पात उपलब्ध नहीं था। मैं नहीं जानता कि अब यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है या नहीं किन्तु मैं यह जानता हूं कि हमारे इस्पात का उपयोग मशीनी औजार तथा मशीनरी बनाने में नहीं किया जाता। ऐसा नहीं है कि भारत में ऐसा इस्पात नहीं बनाया जा सकता किन्तु हमने ऐसा इस्पात बनाने का प्रयास ही नहीं किया। यह तकनीकी समायोजनों का एक विशेष प्रकार का फार्मूला है। चूंकि यह इस्पात भारत में नहीं बनाया जाता इसलिए हम ऐसी मशीनें भी नहीं बना सकते जिनके द्वारा हम मशीनरी तथा मशीनी औजार बना सकें। हमें सदा यह शिकायत रही है कि इस देश में हवाई जहाज तथा मोटर-कारों का निर्माण नहीं होता है। ये बहुत बड़े प्रश्न हैं। किन्तु जिस प्रकार प्रादेशिक

*आम बजट मांगों की सूची के संबंध में चर्चा में भाग लेते हुए केन्द्रीय विधान सभा वाद विवाद, 6 मार्च, 1942 पृ० 788-90

सरकारों ने पावर अल्कोहल के लिए प्रयास किया है, मैं नहीं जानता कि इसने भारत सरकार का ध्यान अपनी ओर खींचा है।

अब जावा और शायद बर्मा से भी पैट्रोल मिलना बंद हो जाएगा और हमें पूरी तरह पारस की खाड़ी अर्थात् ईराक तथा ईरान के पैट्रोल पर निर्भर रहना होगा। किन्तु कोई यह फिर नहीं कह सकता कि बसन्त ऋतु के बाद वहां क्या स्थिति होगी। शायद सारा पैट्रोल जितना कि हमारी सरकार मंगवा सकती है। उसकी उस क्षेत्र में आवश्यकता पड़े। वहां प्रत्येक प्रकार का खतरा है। वर्तमान लड़ाई पैट्रोल की लड़ाई है तथा हम यह नहीं जानते कि अगली बसन्त ऋतु के बाद यदि पूर्व की ओर से हमारे ऊपर जापानी आक्रमण होता है तो हम क्या करेंगे। हमने किसी अन्य स्रोत से अथवा कृत्रिम ईधन की प्राप्ति के लिए कभी कोई प्रयास नहीं किया। हमने समाचार पत्रों में पढ़ा है कि दूसरे देश कोयले तथा समुद्री शैवाल से भी ऊर्जा का उत्पादन कर सकते हैं। हम नहीं जानते कि इतने प्रोत्साहित करने वाले भाषणों के बावजूद भी हमने देश का मनोबल बनाए रखा है। हम नहीं जानते कि जहां तक पैट्रोल की पूर्ति का संबंध है हमने किन स्रोतों का उपयोग किया है अथवा करने जा रहे हैं। मुझे विश्वास है जिसके बिना हमारी थल सेना, नौसेना, वायु सेना का कोई लाभ नहीं है। यह प्रश्न का एक पहलू है। हमने देश की रक्षा के लिए अपने सभी संसाधनों का वैज्ञानिक उपयोग नहीं किया है और मैं साधारणतः यह जानना चाहूंगा कि हम वास्तव में आज भी क्या कर रहे हैं।

मेरा दूसरा मुद्दा जो मैं बताना चाहता हूं वह यह है कि माननीय वित्त सदस्य ने अपने भाषण में हमें यह बताया है कि युद्ध उद्देश्यों के लिए वर्तमान खरीददारी से हमारे उद्योगों को इतना अधिक प्रोत्साहन मिलेगा कि भविष्य में ये उपस्कर राष्ट्र के पुनःनिर्माण में प्रयुक्त किए जाएंगे। देश का औद्योगिकीकरण होगा और युद्ध के पश्चात् हमारी राष्ट्रीय सम्पदा में अत्यधिक वृद्धि होगी। परन्तु पारम्परिक अंधविश्वास, अभी भी मौजूद है। उदाहरण के लिए, एक बार मैंने सदन में पूछा था, मैंने देखा कि कुछ जगहों पर नमक तीन आना प्रति मानक सेर के हिसाब से बेचा जा रहा था, जबकि उसी के पास कुछ मील दूर के क्षेत्रों में नमक बनाया जाता था। इस सदन के सदस्य के रूप में उस समय मैं काफी नया था। मैं जानता था कि नमक बनाना सरकार का एकाधिकार था और मैं जानता था कि जब सारा नमक सरकार के हाथों में था तो सरकार को उपभोक्ताओं को वितरण हेतु कोई न कोई व्यवस्था करनी चाहिए थी। मुझे सदन में पता चला कि इस पर 1.4.0 रुपया मन का शुल्क था अर्थात् छह पैसा सेर तथा नमक

बनाने के लिए शुल्क प्रति मन लगभग चार आना है। परन्तु प्रति सेर इसे 3 पैसे अथवा ज्यादा से ज्यादा 4 पैसे होना चाहिए। मैंने सदन में कहा था कि नमक बनाए जाने वाले स्थान के अत्यधिक करीबी क्षेत्रों में नमक तीन आने के भाव बेचा जा रहा था। मैंने सरकार से पूछा क्या यह बात उसकी जानकारी में है। उन्होंने कहा, "हम नहीं जानते यह कहां और किस भाव बेचा जाता है। बेचने संबंधी जिम्मेदारी हमारी नहीं है।" और आप देश में नमक का वितरण भी नहीं करते हैं जबकि इस पर आपका एकाधिकार है? यदि किसी क्षेत्र में नमक की कमी हो तब भी आपको परवाह नहीं है। वे एक रुपया प्रति सेर दे सकते हैं। वहां कोई व्यवस्था नहीं थी, मैं नहीं जानता यदि वहां इस बुनियादी जरूरत की वस्तु के वितरण के लिए अब कोई व्यवस्था की गई है जिस पर सरकार का एकाधिकार है।

उद्योगों के संबंध में इस सदन में प्रायः यह समझा जाता है कि मैं संरक्षण का विरोधी हूं। लेकिन ऐसा नहीं है। भारत एक विशाल देश है; एक महाद्वीप है। यहां कतिपय उत्पादन और निर्माण करने वाले क्षेत्र हैं और अन्य क्षेत्र हैं जो कि अत्यधिक विशाल हैं और ये खपत वाले क्षेत्र हैं। मैं प्रान्तीय आधार पर बात नहीं कर रहा हूं परन्तु में कह सकता हूं कि कुछ प्रांत ऐसे हैं जहां केवल खपत होती है कुछ ऐसे प्रांत हैं जहां उत्पादन होता है। मैं चाहता हूं कि वितरण उचित प्रकार से हो। हम आगे आएं और इस्पात, चीनी को संरक्षण प्रदान करें। मैं अपने ही प्रांत को लेता हूं। उस समय यह प्रांत नहीं था, यह बिहार और उड़ीसा का हिस्सा था। बिहार में चीनी होती थी और उड़ीसा में कुछ नहीं। मैं आपको अपने प्रांत के बारे में एक बात बताता हूं यद्यपि मद्रास, बंगाल और उड़ीसा सभी खपत वाले प्रांत हैं। मेरा प्रांत तो पूरी तरह मात्र खपत करने वाला ही प्रान्त है। मैंने इस सदन में एक बार, संरक्षण शुल्क सहित जनसंख्या के प्रति व्यक्ति प्रत्यक्ष कर राशि के बारे में बताया था। प्रत्येक व्यक्ति सरकार और साथ ही साथ उद्योगपतियों को 4 रुपया प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष के हिसाब से अप्रत्यक्ष कर के रूप में देता है। उड़ीसा प्रत्येक वर्ष तीन करोड़ रुपए से अधिक देता है इसमें से कुछ भाग भारत के राजकोष को और कुछ उद्योगपतियों को जाता है। उड़ीसा को अपनी क्रय शक्ति बढ़ाने हेतु क्या मिलता है? तथापि, उड़ीसा के पास एक तरीका है। उड़ीसा को चाय बागानों से पैसा मिलता था। असम चाय के लिए औद्योगिक केन्द्र है। इसे जमशेदपुर कलकत्ता और रंगून से मजूरी मिला करती थी। परन्तु चाय के यह साधन समाप्त होते जा रहे हैं। अब आप पूरे प्रदेश में अपनी औद्योगिक योजनाओं के साथ आपूर्ति के लिए खरीद के लाभ देने की कोशिश कर रहे हैं।

पिछले अवसरों पर मैं हथकरघा उद्योग, कुटीर उद्योग और ऐसी ही कई अन्य बातों पर बोला था। अभी पिछले दिन सर होमी मोदी की इस बात से मुझे प्रसन्नता हुई कि आपूर्ति

विभाग युद्ध आपूर्ति के लिए समूचे भारतवर्ष में ग्रामोद्योगों की योजना चलाने जा रहा है। परन्तु यह भी मेरा ही विचार था। लेकिन अब आपको क्या मिला? मद्रास, बंगाल और उड़ीसा के तटीय क्षेत्रों को क्या मिलने जा रहा है? वास्तव में उड़ीसा में रंगून, बर्मा, मलाया, कलकत्ता, जमशेदपुर और अन्य स्थानों से शरणार्थी आ रहे हैं। संभवतः जमशेदपुर से केवल महिलाएं और बच्चे आ रहे हैं। उन्हें किसी तरीके से वहां से निकाला गया है। अब आप क्या करेंगे? आपने कहा है कि भारत के उद्योगों को दिए गए प्रोत्साहन के कारण युद्ध के बाद सहस्त्रों गुणा समृद्धि होगी। लेकिन हम गरीब व्यक्तियों को युद्ध के दौरान और बाद में क्या करना है? आप शरणार्थियों की इस समस्या का कैसे निपटान करेंगे विशेषरूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जल्द ही हमें अकाल का सामना करना पड़ेगा। इसके अलावा मजबूर होकर मुझे कहना पड़ रहा है कि लूटपाट और हत्याएं होंगी। इन खरीददारियों का क्या प्रभाव है। हम खाद्य-पदार्थों सहित 250 करोड़ रुपया मूल्य की वस्तुएं पहले ही खरीद चुके हैं। जहां तक मुझे याद है उड़ीसा ने लगभग 2 लाख रुपये मूल्य की इमारती लकड़ी सप्लाई की और इसके अलावा कुछ नहीं। क्या आप कुछ और उद्योग विकसित नहीं करना चाहेंगे? आप कानपुर और बंबई में धन लगा रहे हैं। मैं नहीं जानता कि प्रचलित भ्रष्टाचार और जिस प्रकार धन व्यय किया जा रहा है। उसके बारे में अन्य लोगों को क्या कहना है। मैं इस बारे में कुछ नहीं कह रहा हूं। लेकिन वास्तविकता यह है कि भ्रष्टाचार चल रहा है और आप इसे भली-भांति समझ सकते हैं। देश में रुपयों और सिक्कों के रूप में पर्याप्त धन है। मुझे धन के इस रूप में होने में कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन कीमतें बढ़ती जा रही हैं और तटीय क्षेत्रों में शरणार्थियों का आना जारी है। मैंने उड़ीसा के बारे में बताया और व्यवहार्यतः मद्रास में भी यही हाल है जबकि उनकी खरीददारी कुछ बेहतर है। लेकिन यदि आप क्षेत्रवार खरीददारी को देखेंगे तो परिणाम अलग-अलग होंगे।

आपका कहना है कि क्रय शक्ति में वृद्धि हुई है। सिद्धांत रूप से यह वक्तव्य सही है लेकिन आप ने देखा है कि जो लोग तटीय क्षेत्रों में रहते हैं उनको क्या हो रहा है उनकी क्रय-शक्ति में कितनी गिरावट आई है? सभी वस्तुएं बंबई में नहीं खरीदी जाती हैं। मेरा सुझाव यह है कि आपूर्ति विभाग, रक्षा विभाग, उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच संबंध बनाने के लिए कोई एक विभाग होना चाहिए। ऐसी व्यवस्था पर किसी योजना विभाग की स्थापना आवश्यक है। आप देश के औद्योगीकरण के लिए इतना धन व्यय कर रहे हैं। इसे उचित प्रकार से वितरित किया जाना चाहिए। जब आपको अपने बचाव में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है तब आप को इतना अधिक धन व्यय करना होगा। लेकिन धन का अपव्यय न करें। यदि आप ऐसा करेंगे तो युद्ध के तुरन्त बाद

आपको अन्य कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना होगा जो शायद इतनी ही कठिन होगी यद्यपि इससे अधिक कठिन नहीं होगी। आप कृषि प्रधान भारत को तबाह करने जा रहे हैं मेरा तात्पर्य है कि भारत के तटीय क्षेत्रों को।

9

भारत को राज्य संघ बनाने के बारे में संकल्प*

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

'कि यह असेम्बली "गवर्नर जनरल इन काउंसिल" से भारत सरकार अधिनियम, 1935 के भाग 2 (राज्य संघ से संबंधित भाग) को कार्यान्वित करने के लिये तत्काल कदम उठाने की सिफारिश करती है।'

महोदय, सर्वप्रथम मैं इस सभा को यह बताना चाहूंगा कि मैं, विशेष रूप से 1935 के अधिनियम में दिये गये इस राज्य संघ से मोहित नहीं हूं। जब यह अधिनियम पारित किया गया था तब से अब तक बहुत अधिक उतार चढाव आ चुका है और अब तक हम निश्चित रूप से स्पष्टतः भारत की सम्पूर्ण और पूरी स्वतंत्रता की धारणा से परिचित हो चुके हैं। अंग्रेजी सरकार सहित सभी पक्ष के लोग इस बात से सहमत हैं। हम सबने निर्णय लिया है और यहां तक कि हमारे स्वामियों ने भी यह कहा है तथा इन शब्दों के साथ यह आश्वासन दिया है कि यदि कुछ शर्तें पूरी हो जाती है, तो युद्ध की समाप्ति के पश्चात् नयी व्यवस्था के साथ ही हमें स्वतंत्रता प्राप्त हो जायेगी। मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता हूं। इस स्थिति में, मैं इस सभा को यह नहीं बताना चाहता हूं कि वर्तमान संदर्भ में इस बात को पूरा कर पाना व्यावहारिक रूप से कितना कठिन है। किंतु पूर्ण तथा सम्पूर्ण स्वतंत्रता की धारणा के बारे में, आपके विचार जो भी हों, हमारे सभी वर्ग के राजनीतिज्ञ तथा हमारा शासक वर्ग तक इस बात से सहमत है। यह वास्तविकता है। किन्तु हमारी वर्तमान स्थिति क्या है, यद्यपि आज संभवतः अपने जीवन में प्रतिपल दिन और रात में 24 घंटों के दौरान सोते और जागते हम लोग स्वतंत्रता के बारे में ही सोचते रहते हैं, किन्तु मैं नहीं जानता कि इसे प्राप्त करने के लिये हम लोग वास्तव में क्या कर रहे हैं। हमारे समक्ष संविधान के अन्तर्गत अनेक प्रकार की सरकारों के प्रस्ताव अनेक बार रखे गये हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश हम लोग एकमत नहीं हो पाये हैं। सन् 1940 में एक प्रस्ताव रखा गया था। वह हमारे लिये उपयुक्त नहीं था। तत्पश्चात् सन् 1941 में एक दूसरा प्रस्ताव रखा गया। अन्त में "क्रिप्स" आया। हर बार हमारा यह विचार रहा कि

*केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद, 18 फरवरी, 1943, का॰ 377-79 और 397-99

हम लोगों के बीच कोई न कोई सहमति हो जायेगी और कुछ न कुछ उपलब्ध हो ही जाएगा, किन्तु एक दल ने यह आशा करते हुए पूर्णरूपेण और अपने आत्मत्याग के साथ स्वयं को बेच दिया कि विश्व शक्तियां हमारे शासकों पर हमें मुक्त करने के लिये दबाव डालेगी अथवा हमारे शासक ही दया करके हमारे ऊपर सरकार का पूरा दायित्व डालकर सदा के लिये वापस चले जायेंगे। हमारे विचार जो भी रहे हों, हमने स्वयं को पूरी तौर पर बेच दिया है। हम लोग स्वयं एकमत नहीं हो पाये। कुछ पाने के लिये हमारे लिये यही एक पूर्ववती शर्त है। एक ओर आदर्श की बातें की जाती हैं, तो दूसरी ओर असंभव शर्तें रखी जाती हैं। हम लोगों के बीच कोई सहमति नहीं हो पाई और हम लोग जहां के तहां ही रहे तथा इन सब बातों का अंत निराशाजनक ही रहा है। निराशा जैसी वस्तु से देश के राष्ट्रीय जीवन में एक अभाव का सृजन होता है। अतः एक गतिरोध आ गया है। हमें अपने राष्ट्र के प्राचीन इतिहास में, इससे पहले इस प्रकार का गतिरोध देखने को नहीं मिल रहा है। इस समय हम लोग एक बहुत ही गंभीर आपदा से होकर गुजर रहे हैं अर्थात् हम लोग इस समय ऐसी स्थिति में हैं कि हम इस पार या उस पार कुछ भी नहीं कर सकते हैं। हम लोग सदा यह आशा करते हैं कि दूसरे लोग हमारे लिये कुछ करें। यह एक ऐसी मानसिक स्थिति है जिसमें कोई राष्ट्र तेजी से विकसित नहीं हो सकता है। हम लोग किसी न किसी बहाने के आधार पर अथवा बिना किसी आधार के अपने कंधे पर उत्तरदायित्व का बोझ नहीं लादना चाहते हैं। इसलिये हम लोगों को स्वयं ही किसी न किसी सहमति पर पहुंचना चाहिये और हमारे शासक हमारे सहमत समाधान को प्रतिफलित करने के लिये वचनबद्ध है। हमसे यही कहा जाता है कि युद्ध के पश्चात् ही, सभी कुछ किया जायेगा। हमसे यह कहा जाता है कि युद्ध विराम के पश्चात् भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने के उपाय किये जायेंगे। युद्ध विराम की आशा में अनेक कार्य रुके पड़े हैं किन्तु सबसे पहले हमें यहां और इसी समय स्वयं अपने कंधों पर उत्तरदायित्व उठाने के बारे में विचार करना होगा। हम लोग सदा ही कुछ न कुछ करना चाहते हैं, किन्तु वास्तव में हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, क्योंकि हम लोग किसी भी बात पर सहमत नहीं हो पा रहे हैं।

संघ ही तो एक ऐसी बात है जिसे देने के स्पष्ट और निश्चित वायदे से ब्रिटिश सरकार बंधी है। यह अधिनियम में है किन्तु इस समय साम्प्रदायिक मतभेद ही मुख्य अड़चन हैं, मुख्य बाधा बने हुए हैं और इन्हीं कारण हमें अपना लक्ष्य प्राप्त करने में विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, बावजूद इस बात के कि अन्तरिम उपाय के रूप में संघ को प्राप्त करने में युद्ध आड़े नहीं आएगा। जब हम साम्प्रदायिक समझौते की बात करते हैं, तो हम वास्तव में बिना कोई परिणाम

प्राप्त किये, बिना किसी संविधान को लागू करे और बिना कोई स्पष्ट बात देखे और बिना किसी ऐसी वस्तु को जिसे हम विश्वासपूर्वक अपना कह सकें प्राप्त करें। हम कुछ देने की बात करते हैं। ऐसी स्थिति में हम हमेशा बंटवारे से ही बात शुरू करते हैं। हमारे पास देने को कुछ भी नहीं है और फिर भी हम देने का वायदा करते हैं और इससे शायद हमारी दासता और उजागर होती है। हम ऐसे लोगों की तरह बातें करते हैं जिनके पास अपनी बातचीत के बारे में कोई स्पष्ट विचार ही नहीं होता है। लेकिन यह ऐसा विषय है जिसमें लेने देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अगर इसे प्रख्यापित किया जाता है तो सभी सम्प्रदाय स्वतः ही एकजुट होकर पहले से किए गये इस सांविधिक उपबंध के लिए और इस संविधान के कार्यकरण के लिए सहयोग से कार्य करेंगे।

महोदय, हम सरकार से या लोगों के साथ सहयोग करके ही साम्प्रदायिक समझौता कर सकते हैं। जैसाकि एक बार मैंने पहले कहीं और कहा है कि, हम प्रांतों में मिली-जुली सरकारें और केन्द्र में संयुक्त (कंपोजिट) सरकार बनाकर ही अपने स्वतंत्रता प्राप्ति या अन्य उद्देश्यों का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। लेकिन ऐसे वातावरण में जबकि हमारे पास वास्तव में अपना कहने को है ही कुछ नहीं हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। अभी तक हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है और दिन-प्रति-दिन हम और अधिक रिक्त होते जा रहे हैं। यदि हम पिछले अपने साम्प्रदायिक समझौते के इतिहास को देखे तो हम पायेंगे कि पिछले दस या इससे अधिक वर्षों में हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है। दिन-प्रति-दिन हम अलग-अलग ही होते गये हैं। अतः मैं सोचता हूं और यह मेरा पक्का मत है कि हमें ऐसे प्रत्येक अवसर का लाभ उठाना चाहिए, जब हम मिलजुल कर कार्य कर सकें। हालांकि कुछ लोग इसे पाखंड भी कह सकते हैं। मेरा मत है कि किसी भी कार्य में कुछ तत्व होता है, लेकिन कुछ लोग अगर इसे पाखंड भी कहते हैं तो उन्हें ऐसा कहने दें। मेरा पक्का विश्वास और मत है कि जब हम सभी साम्प्रदायों के लोग मिलकर स्वयं सरकार चलायेंगे, चाहे हम किसी भी अनुपात में हों, तो इससे साम्प्रदायिक सदभावना में प्रगति होगी और हमारा विकास होगा। इस उपाय से साम्प्रदायिक भेदभाव नहीं होगा। अगर वे कोई मुक्त व्यापार नीति या कुछ टैरिफ (शुल्क) लगाने की बात करते हैं या कर्मचारियों को मंहगाई भत्ता देने की बात करते हैं तो इसमें कोई भी साम्प्रदायिक बात नहीं है। इससे हिन्दू, मुसलमान, पारसी या हरिजन को यह मिले या न मिले, का प्रश्न ही नहीं उठता। इन विषयों पर हमें मिलकर आपसी सहयोग से प्रति दिन प्रति घंटे कार्य करना चाहिए। यही एकमात्र ऐसी रचनात्मक बात है जिसका हमें पालन करना चाहिए और हमें ऐसे अवसरों का लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए।

यह सत्य है कि हमारे राजनीतिज्ञों का एक बड़ा वर्ग सब कुछ त्यागने पर विचार कर रहा है। महोदय, मैं अपने जीवन में पक्का कांग्रेसी और पक्का देशभक्त रहा हूं—और

अपने जीवन में अनेक वर्षों तक इस आत्म त्याग की नीति पर विश्वास करता रहा हूं। लेकिन जब युद्ध आरम्भ हुआ और जब इस नीति का पूरी तरह पालन किया जाने लगा तो ऐसे महत्वपूर्ण समय में मंत्रालय त्यागने के निर्णय से मैं सहमत नहीं हूं। तब मैंने एक सार्वजनिक बयान जारी किया और कहा कि "भगवान के लिए यह गलती मत करें" "ऐसा समय आ सकता है, जब विमानों की बात क्या कहें, एक जवान भी विदेश से इस धरती पर आने में असमर्थ होगा, और हमारे शासक, जिन्होंने छह पीढ़ियों तक हम पर शासन किया है, और हमें तोप चलाने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया अब रंग, वर्ग या जाति का भेदभाव किये बिना हमें सेना में भर्ती होने का अवसर प्रदान कर रहे हैं।" मैंने कहा कि इस अवसर को खोना नहीं चाहिए। यदि आप अपने को एक राष्ट्र के रूप में मान्यता देना चाहते हैं, तो आपको इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए।" तब मैंने कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद को एक पत्र लिखा और कहा कि जब तक विचार नहीं मिल जाते, मैं उनके साथ नहीं हो सकता, मुझे यह कहते हुए दुःख हो रहा है कि कांग्रेस के साथ इतने लम्बे समय तक रहने के पश्चात मुझे कांग्रेस छोड़नी पड़ी। मेरा विश्वास है कि अनुकूल सहयोग की नीति का प्रभावी ढंग से पालन करना चाहिए और हमारे राष्ट्र की उन्नति का यही एकमात्र रास्ता है।

मैं इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर यह संकल्प प्रस्तुत कर रहा हूं। हालांकि कई लोगों को इस बात पर बड़ा आश्चर्य होगा कि मैं इस चरण पर यह संकल्प प्रस्तुत कर रहा हूं, क्योंकि इस उपाय के पारित हो जाने के पश्चात भी देश के अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक दल के नेता यह कहेंगे कि वे इसे स्वीकार नहीं करते। ऐसे लोग भी, जिन्होंने इंग्लैंड में राज्य संघ के इस विचार पर अपनी सहमति प्रकट की थी, अब इस कानून के पारित हो जाने के पश्चात कहेंगे कि वे इसे नहीं चाहते। अंततः वे इसे चाहें या न चाहें, लेकिन तदर्थ उपाय के रूप में यह प्रतिवाद और कुंठा के वातावरण से बेहतर है।

महोदय, कुंठा से सदैव एक शून्य पैदा होता है जिसे प्रकृति कभी पंसद नहीं करती। जब आप नहीं आयेंगे तो निश्चय ही दूसरे लोग आपका स्थान लेंगे। विश्व राय को प्रभावित करने वाला आपका विरोध यदि आपकी मांग के पीछे पुष्टि का अभाव होगा, तो यह कभी सार्थक नहीं होगी, यह पूरी नहीं होगी। अगर आप जेल से बाहर से या कहीं भी आप हों, किसी भी मांग को रखते हैं, और जिन लोगों से आप मांग करते हैं, वे उसे नहीं मानते तो आपको आम भाषा में कही जाने वाले शब्द पुष्टि का सहारा लेना पड़ेगा। इस प्रकार की पुष्टि के लिए किसी न किसी संविधान की जरूरत होती है। मैंने पहले ही कहा है कि इस प्रकार की पुष्टि के लिए, आपको युद्ध में सम्मिलित होना चाहिए। अगर आप सफलातपूर्वक इस महायुद्ध में शामिल हो जाते हैं तो भविष्य में कोई भी राष्ट्र यह नहीं कहेगा कि भारत आत्म रक्षा में असमर्थ है। आपके साम्प्रदायिक मतभेद कुछ भी हो,

अगर आप व्यवहारिक हैं तो आप यह पुष्टि पैदा कर सकते हैं। तब हमारे शासक अनुभव करेंगे और उन्हें विश्वास आयेगा कि हम अपने राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ हैं। तब वार्तालापों, वायदों सभी प्रकार की बातों में व्यापक परिवर्तन आयेगा।

अब हमें इस व्यावहारिक तौर पर बातों को समझने का प्रयास करना चाहिए। हमें तथ्यों का सामना करना चाहिए और महान प्रभावशाली आदर्शों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। दार्शनिक आदर्शों के बारे में सोचते हैं और पैगम्बर इनका प्रचार करते हैं। इस संसार में सभी पैगंबरों ने आदर्शों की शिक्षा दी है। हिटलर ने भी ईसा मसीह के आदर्शों को कार्यरूप दिये जाने का दावा किया है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है। विश्व की सामान्य घटनाओं में व्यवहारिक व्यक्ति को सदैव तथ्यों का सामना करना चाहिए। हमने काफी लम्बे समय तक इन आदर्शों का पालन किया है और जैसाकि मैंने कहा कि इससे हमें कुंठा ही मिली है। हम पुनः उसी सोच पर चल रहे हैं जैसे कि कोई चमत्कार हो जायेगा और हमें खुशहाली और उपलब्धियां प्राप्त हो जायेंगी ऐसा नहीं होगा। आइए हम किसी भी प्रकार की ऐसी सरकार में मिलकर बैठ जायें जहांकि हम अपने लोगों के लिए जिम्मेदारी से कार्य कर सकें—सहयोग और आपसी विचार विमर्श से कर सकें। हमें लेन-देन के लिए खाली वार्ताओं में अपना समय व्यर्थ नहीं करना चाहिए जबकि देने और लेने के लिए हमारे पास कुछ भी तो नहीं है।

निष्कर्ष रूप में, मैं सत्ता पक्ष के अपने मित्रों से अनुरोध करता हूं कि अगर वे ईमानदारी से प्रयास करना चाहते हैं तो इस मामले पर गम्भीरता से सोच विचार करें। ब्रिटिश सरकार को अब निर्णय करना चाहिए कि देश में किसी भी राय के बावजूद उनके लिए क्या यह उचित नहीं है कि समूचे भारत के सहयोग से वे यह लाभकारी व्यवहारिक उपाय करें। मैं समझता हूं कि वे इसे तत्काल ही वास्तविक व्यवहार में लायेंगे। मैं उनसे बार-बार अनुरोध करता हूं कि वे अपने पहले के वायदे के अनुसार इसे अमल में लायें और इसे बिना व्यवहारिक रूप दिये किसी को भी इसकी आलोचना न करने दी जाये। अब हमारे सामने यही एकमात्र व्यवहारिक उपाय है। मेरा सुझाव है कि ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार अब इस मामले पर व्यवहारिक रूप से सोचें और महायुद्ध समाप्त होने तक इसे अंतरिम उपाय माना जाये बेहतर समय आने तक भारत के स्वतंत्र होने तक—हमें अत्याधिक व्यवहारिक उपाय के लिए कार्य करना चाहिए। हमें ऐसा करना ही चाहिए। महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

> "कि यह सभा गवर्नर-जनरल-इन-काउंसिल से भारत सरकार अधिनियम 1935 के भाग दो (राज्य संघ से संबंधित भाग) को कार्यान्वित करने हेतु शीघ्र उपाय करने के लिए सिफारिश करे।"

* * *

महोदय, मैं यह स्वीकार करता हूं कि पूरे वाद-विवाद के दौरान मैं उलझन में रहा। शायद यदि संकल्प के आशय की व्याख्या करके उसे प्रस्तावक के भाषण के साथ मिलाकर पढ़ा जाता तो उसे इसके लिए और अधिक समर्थन मिल सकता था। मैं पूरे समय इस बारे में अत्यंत सावधान रहा कि किसी विवाद में न पड़ूं।

पाकिस्तान या फिर बाकिस्तान जैसा कि मैं इसे कहना पंसद करता हूं क्योंकि बाकी भूमि तब हिन्दुस्तान नहीं होगी क्योंकि इसमें अन्य धर्मों के लोग भी होगें, इसलिए यह बाकिस्तान होगा अर्थात शेष भूमि—मैं किसी विवाद अथवा किसी बातचीत या मांग के मामले में नहीं पड़ता। काफी लम्बे समय से आप झगड़ते रहे हैं और बातचीत करते रहे हैं, लेकिन बिना किसी परिणाम के और अगर आप चाहो तो भी कोई इसमें बाधा नहीं डालना चाहता है। लेकिन मेरा विचार है कि आज आप वास्तव में एक शून्य में हैं, आप बातचीत करते हैं, झगड़ा होता है और परिणाम कुछ नहीं निकलता तथा आप दोनों में अलगाव बढ़ता जाता है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि चार वर्षों से चली आ रही इस बातचीत और इन झगड़ों का क्या परिणाम निकला है?

*　　*　　*　　*

मेरा उद्देश्य यह है कि यदि संकल्प के अनुसार एक संविधान बन जाता है, जिस पर सभी दल सहमत हो जाते हैं और ब्रिटिश सरकार वचन देती है...जहां तक मैं कह सकता हूं, सभी पार्टियां सामान्यतः मान गई थीं और ब्रिटिश सरकार भी वचनबद्ध है। मैं स्वयं इस बात का अभी भी हामी हूं। और ऐसा संविधान हमें कम से कम एक ऐसी सरकार देगा जो कि वायसराय और सेक्रेटरी आफ स्टेट की बजाय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी रूप में इस देश के लोगों के प्रति जिम्मेवार होगी। उन बैंचों पर वे लोग होंगे जो देश के हितों का प्रतिनिधित्व करेंगे और जो अपने निर्वाचन क्षेत्रों के प्रति जिम्मेवार होगे। हो सकता है संविधान आदर्श न हो जैसा कि मैंने कहा है कि मैं इस के प्रति अधिक अनुरक्त नहीं हूं और यह भी नहीं चाहता हूं कि यह सदा सर्वदा वर्तमान रहे और शायद जैसा कि मेरे मित्र मौलाना जफर अली खान ने भाई परमानन्द की बात का अर्थ या अनर्थ निकाला, हम कभी नहीं चाहते कि ये विदेशी हम पर सदा राज्य करें और न ही हम किसी तरह की बातचीत से बचना चाहते हैं। लेकिन अब सारी बातचीत बेकार की गपशप के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जिसका कोई अर्थ नहीं है और इसके लिए कोई जिम्मेवारी नहीं है। अब क्या हम वास्तव में ऐसा सोचते हैं कि हम किसी भी मामले में किसी रूप में प्रभावित हुए हैं? ये लोग हमारे लिए यह सब कर रहे हैं। हम कहते हैं कि "उन्हें अपना कार्य करने दें।" लेकिन यदि उन बैंचो में उन लोगों के कोई प्रतिनिधि होते, ऐसे लोग जो किसी निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते, अगर उद्धाहरण के लिए वे अनुभव करते कि जापान प्रगति कर रहा है अथवा जर्मनी टूट रहा है या विश्व में हमारे बारे में होने वाली ऐसी ही कोई अन्य बात होती तो इसका भारत में कोई अर्थ होता। इससे वास्तविकता सामने

आएगी। मेरा कहना है कि हमें कुछ न कुछ जिम्मेवारी अवश्य लेनी चाहिए और जब हम ऐसा करते हैं तो वास्तव में हम या तो अपनी सुरक्षा के लिए उपाय बना रहे होंगे या फिर अपनी वित्तीय नीति को तैयार कर रहे होंगे और अपने औद्योगिक संगठन और विकास की आयोजना कर रहे होंगे। हमें ऐसे कार्य करने चाहिए और ऐसा करने की प्रक्रिया में हम एक दूसरे के सम्पर्क में आएंगे और हम चीजों के वास्तविक सम्पर्क में आएंगे क्योंकि तब हम अपनी सरकार चला रहे होंगे। यह कार्य करने के बाद यदि आप पाकिस्तान और बाकिस्तान बनाना चाहते हों और आप इस बारे में कोई समझौता करते हो तो आप ऐसा कर सकते हैं। लेकिन अभी आपको कोई अनुभव नहीं है आप किसी नतीजे तक नहीं पहुंच सकते आप कोई कार्य नहीं कर सकते.....।

उड़ीसा मंत्रिमंडल के बारे में शायद किसी गलतफहमी के अंतर्गत कुछ कहा गया था। उड़ीसा में मंत्रालय अभी भी कार्य कर रहा है और मेरे कई मित्र जानते होंगे कि इसके लिए मैं व्यक्तिगत तौर पर प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेवार हूं—मैंने कांग्रेस अध्यक्ष को लिखा था कि मुझे किसी मंत्रालय को समाप्त करना पसंद नहीं है और अगर वे समाप्त करना चाहते हैं तो मैं इस बात को देखूंगा कि अन्य मंत्रालय काम करते रहे, इसलिए वहां काम कर रहे मंत्रालय के लिए मैं निश्चित तौर पर प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेवार हूं और मैं अपने माननीय सदस्यों को बता सकता हूं कि हालांकि मेरे क्षेत्र में मुस्लिम जनसंख्या केवल 1.7 प्रतिशत है जो 2 प्रतिशत से कम है परन्तु मंत्रालय में उनका प्रतिशत 331/3 है। यदि यह मांग की गई होती तो मैं यह चाहता कि तीनों अथवा तीन में से दो मुसलमान होते। लेकिन यह मांग नहीं की गई। और मैं यह नहीं जानता कि यह मांग क्यों नहीं की गई है। मेरे क्षेत्र में, नौकरियों में मुसलमानों की संख्या का प्रतिशत 20 से कम नहीं है और किसी को भी इस बारे में कोई शिकायत नहीं है। मैंने इस गरीब क्षेत्र में इस कोने में कोई मांग नहीं सुनी, जो कि शरणार्थियों और अकाल का क्षेत्र है—कहीं भी किसी पाकिस्तान या बाकिस्तान बनने की बात का जिक्र नहीं है। कोई इस बारे में सोचता तक नहीं है। हम हिन्दू और मुस्लिम साथ-साथ अब तक शांतिपूर्वक रह रहे हैं। मैं नहीं जानता कि मेरे इस कथन के बारे में मेरे माननीय मित्र क्या सोच रहे हैं और यह उनकी भविष्य की गतिविधियों को कैसे प्रभावित करेगा। लेकिन मैं उन्हें विश्वास दिला सकता हूं कि इस क्षेत्र में पाकिस्तान और बाकिस्तान, हिंदू अथवा मुसलमान की कोई भावना नहीं है—मैंने कभी कोई ऐसी बात नहीं सुनी है। मैं अपने मुसलमान पड़ोसियों के पास जाता हूं मैं अपने मुस्लिम मंत्री को भी जानता हूं, हम सब मित्र हैं.....।

....इस समय—मैं आपको बता दूं कि विवाद से बचने के लिए मैंने राजकुमारों की बात नहीं की है। मैं यहां से अपनी अपील राजकुमारों को, उस बैंच पर बैठने वाले अपने मित्रों को इन बैंचों पर बैठने वालों को जो इस समय देश पर शासन कर रहे हैं तथा

उनको, जो इंग्लैंड में हैं, स्थिति की वास्तविकता को देखने तथा उनका सामना करने तथा भारतीय लोगों को उन वास्तविकताओं से परिचित कराने के लिए भेजता हूं और यह कार्य केवल भारत सरकार अधिनियम, 1935 के खंड II को लागू करके ही किया जा सकता है। इन शब्दों के साथ मैं अपने संकल्प को सदन के सभी वर्गों द्वारा समर्थन के लिए प्रस्तुत करता हूं।

10
दिल्ली विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक*

महोदय, दिल्ली विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक पर चर्चा पर मैंने पाया कि इसके परिचालन के पक्ष में कुछ नहीं है। इसका आमतौर पर विरोध हुआ है क्योंकि समूची दि०पि० योजना अच्छी नहीं है। यदि दिल्ली विश्वविद्यालय बुरा है तो हम इस विधेयक को फेंक दें और जांच करने तथा रिपोर्ट देने के लिये एक आयोग या ऐसा ही कुछ बना दें। किन्तु जब इस उपाय खास पर विचार करना हो तो हमें उठाये गये खास सवालों पर स्वयं को केन्द्रित करना होगा। मैंने चर्चा में पाया कि पांच सवाल उठाये गये हैं। विधेयक में पांच परिवहनों की मांग की गई है। पहली, तीन साला स्नातक पाठ्यक्रम, दूसरी कार्यकारी परिषद को मान्यता देने की शक्ति प्रत्यायोजित करना और उसे वापस ले लेना, तीसरी कार्यकारी परिषद के लिये दो महिलाओं और दो प्रोफेसरों को निर्वाचित करना, चौथी विश्वविद्यालय के शिक्षकों की नियुक्ति और उनकी पहचान के लिये नई चयन समिति गठित करना और पांचवी यदि आवश्यक हो तो उपकुलपति, कुलपति द्वारा नामजद किया जाना चाहिये उसे पूर्णकालिक पद दिया जाना चाहिये और इस प्रयोजनार्थ उसे भुगतान किया जाना चाहिये।

आइये हम इन प्रश्नों पर एक-एक करके विचार करें। पहला, तीन वर्षीय पाठ्यक्रम। किसी ने इस उपाय की खूबियों का विरोध नहीं किया। उसमें कठिनाइयां हो सकती हैं, धन व्यय करके समायोजन करने होंगे किन्तु इन प्रश्नों का यहां सीधा संबंध नहीं है। मेरी राय में विश्वविद्यालय एक स्वायत्तशासी और सांविधिक निकाय है। इसके प्रभारकों ने डिग्री कोर्स को तीन वर्षों तक बढ़ाने और माध्यमिक शिक्षा में एक वर्ष जोड़ने की एक योजना तय कर ली है। इसके लिए वे अधिनियम में केवल कुछ परिणामिक संशोधन चाहते हैं। यहां कोई ऐसी शक्ति नहीं छीनी जा रही है जो पहले दे दी गई हो। मुझे ऐसा ही लगता है। सीधा सवाल है कि क्या हम जो उपाय करने जा रहे हैं, उसके लिये उन्हें सुविधा प्रदान करें। मैं समझता हूं कि पहले ही उपाय कर चुके हैं। हाई स्कूल के छात्रगण पहले से ही 11वीं के लिये तैयारी कर रहे हैं और ये मामूली पारिणामिक परिवर्तन जरूरी हैं।

*केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद, 1 अप्रैल, 1943, पृष्ठ 1710-13

यदि हम दिल्ली विश्वविद्यालय की सम्पूर्ण योजना का विरोध करें तो वह अलग बात होगी, किन्तु मेरे विचार से वह बात यहां संगत नहीं होगी। जहां तक खूबियों की बात है, क्या एक वर्ष माध्यमिक शिक्षा को जायेगा, क्या इंटरमिडियेट परीक्षा हुआ करेगी, क्या डिग्री कोर्स तीन साल का होगा इस विषय के बेहतर जानकार मेरे कुछ मित्रों ने इन मुद्दों पर भलीभांति चर्चा की है। यदि दिल्ली विश्वविद्यालय धन और समायोजना के लिये तीन वर्षीय डिग्री के कदम की उद्घोषणा करने जा रहा है, तो या तो धीरे-धीरे अनुभव से आगे बढ़ेंगे अथवा हो सकता है वे पहले ही इस आकस्मिकता के लिये व्यवस्था कर चुके हों, भले ही उन्होंने ऐसा न कहा हो। फिर भी यह एक प्रयोग ही होगा। किंतु ये एक बहुत अच्छा उपाय है और वह भी दिल्ली जैसे आदर्श विश्वविद्यालय में। इसमें यह प्रयोग होने दो, वह हो सकता है उनका विचार हो। पहले प्रश्न पर इतना ही।

दूसरा सवाल है कार्यकारी परिषद् को मान्यता देने की शक्ति प्रत्यायोजित किया जाना और उसे वापस लिया जाना। इसे विपरीतगामी कार्यवाही कहा गया है। मेरे विचार से तो यह प्रावधान पहले भी था। यदि यह वे अधोगामी है, तो यह पहले ही वहां था। इसके लिये इस अधिनियम को 1922 बनाने वाले लोगों को दोष देना होगा। मुझे तो ऐसा ही लगता है। इस मौके पर इन बड़े मामले में पड़ने वाले हम कौन होते हैं? अधिनियम का उपबंध यह है—धारा 28

"अधिनियम के उपबंधों के अध्यधीन, निम्नलिखित मामलों में सभी अथवा किसी के लिये भी विधि में प्रावधान किया जा सकता है, नामशः

(छ) विश्वविद्यालय द्वारा अनानुरक्षित महाविद्यालयों और प्रेक्षागृहों को मान्यता और उनका प्रबंध तथा मान्यता का वापस लिया जाना।"

इसके लिये यह प्रावधान कि न्यायालय अपने निर्णयों में निश्चय ही निर्देश देंगे। कानून बनाना न्यायपालिका का काम है। न्यायालय सर्वोपरि है इस विषय में। निस्संदेह किन्तु 1936 में कानून के किसी गलत पाठ के कारण ऐसा लगता है इस उपबंध का ऐसा निर्वाचन किया गया कि हर अवसर पर महाविद्यालय को मान्यता देनी होनी अथवा वापस लेनी होगी ऐसे हर अवसर पर न्यायालय को कानून पारित करना होगा और उसे तत्काल ऐसे लागू करना होगा जैसेकि यहां वित्त विधेयक द्वारा नमक शुल्क के मामले में होता है, हममें से सभी तत्काल नमक शुल्क के समाहरण के लिये चल पड़ेंगे। संभवतः किसी भी विश्वविद्यालय में ऐसे कार्यपालिका संबंधी कार्यकारी परिषद् के सिवाय किसी अन्य निकाय को नहीं दिये जाते। कोई शक्ति नहीं छीनी गई है। न्यायालय कानून बनायेगा। नये संशोधन में भी न्यायालय द्वारा कड़ाई से और विस्तार में शर्तें निर्धारित की जायेंगी और तदन्तर कार्यपालिका का काम है उसे कार्यान्वित करना। मैं नहीं जानता कि स्वयं अधिनियम में ही जो उपबंध पहले से है, उससे अधिक अद्योगामी किस प्रकार हो गया

यह बहुत सरल सा प्रश्न है और फिर भी इस विषय पर विचार करके आप कह सकते हैं कि हर अवसर पर न्यायालय इसे करेगा। धारा 22 (एक) कहता है:—

"कार्यकारी परिषद विश्वविद्यालय की उन सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा जिनका इस अधिनियम अथवा सांविधियों में अन्यथा प्रावधान नहीं है।"

इस उपधारा में जो भी न्यायालय द्वारा उपबन्धित किया गया है, उसे कार्यकारी परिषद् निष्पादित करेगी

तीसरा सवाल है कि कार्यकारी परिषद् में दो महिलाओं को नाम निर्देशित करना और दो प्रोफेसरों को निर्वाचित करना। दो महिलाओं को नामजद करने पर कई गंभीर आपत्तियां हो सकती हैं, किन्तु यह तो इस पर निर्भर है कि निर्वाचन के लिये किसी तंत्र की व्यवस्था करें यह कोई बहुत कठिन नहीं है। यह कोई अच्छी बात नहीं है क्योंकि आजकल बहुत से लोग नामजदगी के खिलाफ हैं। हो सके, तो इससे बचना चाहिये जहां तक दो प्रोफेसरों का प्रश्न है, किसी को भी आपत्ति नहीं होगी। वे विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों और मेरे अजीज डा० ज़ियाउद्दीन द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे। उनका चुनाव विश्वविद्यालय के प्रोफेसर करेंगे और मेरे मित्र डा० सर ज़ियाउद्दीन अहमद, जो विशेषज्ञों की बात कर रहे थे, जानते हैं कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय दिल्ली में डा० सर शान्ति स्वरूप भटनागर जैसे आदमी पहले ही हैं। ऐसे व्यक्तियों को कार्यकारी परिषद में चुना जाना चाहिए और मैं समझता हूं कि इसी तरह चुनी जाने वाली दो महिलाओं के लिए भी एक तंत्र बनाया जाना चाहिए।

इस संबंध में मैं यह कहूंगा कि कार्यकारी परिषद में पहले ही सभी कालेजों के सभी प्रिंसिपल हैं। वे सभी वहां पर पदेन सदस्य हैं। मेरी राय में, यदि सम्भव हो, यहां तक कि इस विधेयक में भी, छः में से दो या तीन का चुनाव उनमें से किया जा सकता है और शेष रिक्तियां प्रतिनिधित्व के दूसरे तरीकों से प्रतिष्ठित शिक्षा शास्त्रियों अथवा विशेषज्ञों में से भरी जा सकती हैं।

चौथे मुद्दे के बारे में मैं इस बात से सहमत हूं कि प्रवर समिति को विशेषज्ञों को शामिल करना चाहिए किंतु यह पूरी तरह से विशेषज्ञ समिति नहीं हो सकती। इसमें पहले ही एक अधिकारी है, एक व्यक्ति शैक्षिक परिषद का है और एक गवर्नर जनरल का मनोनीत व्यक्ति है। किंतु एक ऐसा प्रावधान होना चाहिए जिससे ये तीन या चार मनोनीत व्यक्ति विचारार्थ विषय के प्रयोजन के लिए प्रत्येक अवसर पर एक और विशेषज्ञ को सहयोजित कर सकें। मान लीजिए वे एक भू-वैज्ञानिक की नियुक्ति करने जा रहे हैं और उनमें से कोई भी भू-वैज्ञानिक नहीं है तो उन्हें यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिए कि वे एक विशेषज्ञ सहयोजित कर सकें जो कि विशेष प्रयोजन के लिए उपयुक्त हो।

पांचवां मुद्दा वाइस चांसलर के बारे में है, जो यदि आवश्यक हुआ तो चांसलर द्वारा मनोनीत किया जाएगा और वह पूर्णकालिक होगा तथा उस प्रयोजन के लिए उसे भुगतान किया जाएगा। यदि वाईस चांसलर पूर्णकालिक बना दिया जाता है, तो उसे भुगतान किया जाएगा। व्यवहार्यतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है। किंतु यह प्रावधान वैकल्पिक प्रावधान लगता है क्योंकि पुराना प्रावधान विद्यमान है। यहां एक परन्तुक जोड़ने की आवश्यकता है:—

"बशर्ते कि यदि चांसलर की राय है और वह कार्यकारी परिषद को सूचित करता है कि एक वाईस चांसलर की नियुक्ति इस शर्त पर की जानी चाहिए कि वह अपना पूरा समय-विश्वविद्यालय के काम में लगाएगा, चांसलर कार्यकारी परिषद के साथ उचित परामर्श करने के बाद नियुक्ति करेगा और यदि उस स्थिति में वाईस चांसलर उतने ही समय तक उस पद पर पदासीन रहेगा जितना कि चांसलर निर्धारित करे और उतना ही वेतन प्राप्त करेगा जितना चांसलर निश्चित करे।"

वर्तमान प्रावधान को देखिए:—

"वाईस चांसलर की नियुक्ति कार्यकारी परिषद की सिफारिशों पर विचार करने के बाद चांसलर करेगा और सांविधियों द्वारा निर्धारित अवधि और शर्तों के अनुसार पदासीन रहेगा।"

यदि आवश्यक हुआ तो यह वैकल्पिक उपबंध प्रभावी होगा। हो सकता है, शायद कोई आवश्यकता पड़ जाये, शायद सरकार धन का प्रावधान कर रही है और विश्वविद्यालय का विकास करने के लिए वे इसका पूरी तरह से पुनर्गठन करने जा रहे हैं ताकि एक नया अधिनियम, एक संशोधक अधिनियम, जल्दी ही प्रस्तुत किया जा सके। यह एक निश्चित प्रयोजन के लिए है कि एक विकल्प का प्रावधान किया जा रहा है। पुराने अधिनियम में वाईस चांसलर की नियुक्ति के लिए कार्यकारी परिषद ने सिफारिश की है इस मामले में किसी भी न्यायालय विश्वविद्यालय की विधायिका का दखल नहीं है। कार्यकारी परिषद सिफारिश करेगा। मुझे सभा को बताते हुए खेद तथा दुःख है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में दिल्ली एक बहुत छोटा स्थान है, वाईस चांसलर के पद के लिए या एक विश्वविद्यालयीय अध्यापक के रूप में मान्यता के लिए भी इसकी तुलना कलकत्ता या मद्रास या ऐसे ही किसी स्थान से नहीं की जा सकती, चुनाव प्रचार बहुत ही रुचिकर होता है। मेरे मित्र सहमत होंगे कि इन मामलों में ऐसे प्रचार की निन्दा की जानी चाहिए। इसे हतोत्साहित किया जाना चाहिए। फिर कभी कभी ऐसा होता है कि वाईस चांसलर के पद के लिए किसी व्यक्ति की सिफारिश करने के लिए कार्यकारी परिषद की बैठक होती है और अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो जाती है। कभी कभी ऐसा स्थगन वाईस चांसलर

के चयन की सिफारिश करने को कठिन बनाने के लिए किया जाता है। सम्भवतः ऐसा इस बात से बचने के लिए है कि विधेयक कार्यकारी परिषद के परामर्श का ढंग ही सभा का मत नहीं हो सकता क्योंकि नहीं तो उस मामले में इन बातों को स्थगित कर दिया जायेगा अथवा विफल कर दिया जायेगा। अतः शायद दिल्ली जैसे छोटे स्थान में गलत प्रचार के दुरूपयोग का परिहार करने के लिए यह प्रावधान किया गया है। मैं बिल्कुल ठीक ठीक नहीं जानता, किन्तु ऐसा लगता है कि इसका प्रावधान किसी विशेष प्रयोजन के लिए किया गया है—यदि इसे किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही माना गया है; अन्यथा पुराना प्रावधान विद्यमान है। तथापि इस समय प्रश्न नहीं उठता क्योंकि सर मारिस ग्वेयर विद्यमान हैं; और जब तक वे वहां पर वाईस चांसलर के रूप में विद्यमान हैं मैं समझता हूं यह प्रावधान लागू हो ही नहीं सकता।

अतः केवल यही बातें हैं जिनके आधार पर इस संशोधनकारी विधेयक में सीमित गुंजाइश और प्रयोग वाले बहुत साधारण संशोधन किए गए हैं। मैं उन लोगों के साथ पूरी तरह से सहमत हूं जो यह सोचते हैं कि दिल्ली विश्वविद्यालय संगठन में कई त्रुटियां हैं जिन्हें सुधारने तथा संशोधित करने की आवश्यकता है, किन्तु यहां पर उतना बड़ा मामला अंतर्ग्रस्त नहीं है। दिल्ली विश्वविद्यालय एक आदर्श नहीं है और न ही इस विधेयक के कारण यह आदर्श बन जाएगा। शायद ऐसा कोई भी नहीं कहता। अतः इन संकीर्ण सीमाओं में इस विधेयक को संशोधित करने के आधार को इस ढंग से अवश्य देखा जा सकता है।

11

राजनैतिक बंदियों तथा नजरबंद व्यक्तियों के प्रति व्यवहार संबंधी संकल्प*

राजनैतिक बंदियों और नजरबन्दों के प्रति व्यवहार सम्बन्धी संकल्प के बारे में अपने संशोधन पर आते हुये मैं होम मेम्बर का धन्यवाद करता हूं कि उन्होंने संकल्प तथा मेरे संशोधनों के बारे में अतिशीघ्र उत्तर दिया। मुझे संकल्प तथा संशोधनों पर सरकार की प्रतिक्रिया से अवगत होने का लाभ प्राप्त हुआ है, परन्तु इससे मुझे निराशा हुई है। मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि उनके उत्तर में वही पुरानी निर्जीविता पाई गई है। उन्होंने क्या कहा है? उन्होंने वही तर्क दिया है कि प्रान्त के मामलों में केन्द्रीय सरकार अथवा केन्द्रीय विधान मंडल का कोई दायित्व नहीं है, चाहे प्रान्त गवर्नर के शासनाधीन हो अथवा मंत्रिमंडल के। मैं ऐसा उत्तर सुनने के लिये तैयार नहीं था। इस सभा में सदैव ही यह कहा जाता है कि केन्द्रीय सरकार को प्रान्त के मामलों में कुछ करना धरना नहीं होता और भारत सरकार के इस विधि सम्मत मत को मैंने सच मान लिया होता, क्योंकि मैं एक साधारण व्यक्ति हूं, यदि यह बात सच न होती कि हाल ही में भारत सरकार के कुछ वैधिक निर्णयों को देश के विभिन्न न्यायालयों ने रद्द कर दिया है। मेरे विचार से ब्रिटिश पार्लियामेंट में जब भारत सरकार अधिनियम, 1935, विशेषकर धारा 102, अधिनियमित किया जा रहा था तब आस्ट्रलियायी संविधान समिति की रिपोर्ट उसके समक्ष उपलब्ध थी जिसमें कहा गया था कि गत युद्ध के दौरान न्यायिक निर्णयों के कारण आस्ट्रेलिया की संघीय सरकार एकात्मक हो गई थी, और इस उपबन्ध के अन्तर्गत, गवर्नर जनरल द्वारा देश में आपात-काल की उद्घोषणा के पश्चात, मैं यह मानता हूं कि व्यावहारिक तौर पर यह सरकार एकात्मक सरकार बन गई है इसलिए केन्द्र सरकार और यह सदन देश के सभी मामलों, चाहे वह प्रान्तों से संबद्ध हो अथवा केन्द्र से, पर नियंत्रण कर सकता है। मैं कोई विशेषज्ञ नहीं हूं और मुझे इसकी कोई अधिक जानकारी नहीं है। हो सकता है इसमें कुछ तकनीकी दिक्कतें या कानूनी अड़चने हों लेकिन मुझे इतना विश्वास है कि भारत सरकार या विधायी विभाग के लिए इन दिक्कतों को दूर करना मुश्किल काम नहीं है। इस अवसर पर मैं अपने माननीय मित्र "सर" अशोक कुमार राय

*केन्द्रीय विधान सभा वाद विवाद, 27 जुलाई, 1943, पृ० 91—93

का सदन में विधि सदस्य के रूप में हार्दिक स्वागत करता हूं। वह विधि विभाग के अध्यक्ष हैं और अगर उन्हें विभाग के संगठन में कुछ कमी दिखाई देती है तो वह निश्चय ही उसका पता लगा लेंगे और अगर उन्हें कुछ और सहायता की जरूरत महसूस होगी तो सभी आवश्यक सहायता प्राप्त करने में समर्थ होंगे। मैं आशा करता हूं कि जो विधायी उपलब्धियाँ उन्हें प्रान्तीय स्तर पर प्राप्त हुई हैं, वह उन्हें केन्द्र में भी दोहरायेंगे और भविष्य में विशेषकर इस खराब समय में जबकि प्रशासन आपात स्थिति की घोषणा के दायरे में है कभी भी हमें यह सुनने का मौका नहीं मिलना चाहिए कि केन्द्र सरकार और केन्द्रीय विधान सभा प्रान्तीय मामलों में दखल देने या उन्हें परामर्श देने में सक्षम नहीं है।

माननीय होम मेम्बर ने हमें बताया है कि केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य प्रान्तीय सरकारों को सलाह देने की हैसियत में नहीं हैं। मैं यह बात अच्छी तरह से जानता हूं। किस ने यह हैसियत मांगी है। मैंने अपने संशोधन में इसका दावा नहीं किया है। मैं केवल यह मांग कर रहा हूं कि केन्द्र सरकार के कुछ सदस्य या देश के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति केन्द्र सरकार के इन्तजाम पर प्रान्तों में नजरबंद व्यक्तियों और राजनीतिक कैदियों से मिले और यह जानने की कोशिश करें कि क्या उन्होंने अपने विचार बदल दिये हैं और क्या वह युद्ध उपायों में सहयोग देने के लिए तैयार हैं और यदि वह संतुष्ट हो जायें तो फिर वह इन नजरबंदियों और राजनैतिक कैदियों की रिहाई के लिए सिफारिश करें। इसमें हैसियत की तो कोई बात ही नहीं है। इस मामले में भारत सरकार को अपने कुछ सरकारी मित्रों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए जो उसे स्वीकार्य भी हों।

माननीय सदस्य ने यह भी प्रश्न किया है कि इस बात की क्या गारंटी है कि जिन कैदियों को रिहा किया जायेगा उन्होंने अपने विचार बदल दिये हैं। यह बहुत खेद की बात है कि उन्होंने इतनी निराशाजनक बात की है। नजरबंदी और कैद के पीछे नीति क्या है। सरकार को सहयोग के संबंध में देश भर में दिये गये सुझावों को एकत्र करने की सदैव दृढ़तापूर्वक कोशिश करनी चाहिए। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि उन्होंने साफ यह कहा है कि यह एहतियाती तौर पर बरते जाने वाले उपाय हैं और यह कोई बदला लेने वाले उपाय नहीं हैं। मैं चाहता हूं कि वह उन सभी उपायों और तरीकों पर विचार करें जिनसे उन बंदियों को रिहा कराकर मौजूदा हालात को सुधारने में उनकी मदद ली जा सके।

मैं यहां संकल्प के प्रस्तावक की मांग और अन्य संशोधनों का हवाला देना चाहता हूं। लेकिन इससे पहले मैं माननीय "होम मेम्बर" को यह बताना चाहता हूं—चूंकि मामला बहुत नाजुक है—जहां तक मुझे जानकारी है कि मेरे प्रान्त में परिस्थितियां कुछ इस प्रकार की हैं कि अगर मैं जेलों में जाकर बंदियों से मिलूं तो मैं उनके विचार जान सकता हूं और अगर उनके विचार बदल गये हैं तो मैं उनकी रिहाई के लिए सिफारिश कर सकता

हूं। भारत की इस विशाल धरती पर इस सदन के कई अन्य सदस्य और बाहर के कुछ जनप्रतिनिधि यह कार्य कुशलता से ही नहीं अपितु अधिक कुशलता से कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त युद्ध की स्थिति में बदलाव आ गया है और अब सरकार की नीति भी इसके अनुरूप बदलनी चाहिए। मुसोलिनी ने गद्दी छोड़ दी है और अब वह कैद में है, और मित्रदेश इटली की मुख्य भूमि पर कब्जा करने वाले हैं। जर्मनी की हालत भी रूसी मोर्चे पर नाजुक है। सुदूर पूर्व में जापान की स्थिति भी डांवाडोल है। मैं उन देशभक्तों के लिए अनुरोध कर रहा हूं जो इस समय जेलों में हैं। मैं उनमें से काफी लोगों को जानता हूं शायद उनमें से 99 प्रतिशत आपके लिए मौजूदा हालात में उपयोगी सिद्ध होंगे। वह हमारी मदद करेंगे। सरकार की मदद करेंगे, युद्ध के कार्यों में देश के कामों में मदद करेंगे।

मुझे अपने मित्रों से, संकल्प के प्रस्तावक और अन्य संशोधनों को पेश करने वाले मित्रों से यह कहने दीजिए कि यह बंदियों की रिहाई छिपे तौर पर कराना चाहते हैं। मैं इसे खुले तौर पर चाहता हूं। मैं उनकी रिहाई के लिए एक व्यावहारिक तरीका बताता हूं। मुझे विश्वास है कि मेरे मित्र इस बात से संतुष्ट नहीं होंगे कि उन्हें छोटी मोटी रियायतें दी जायें जैसे मोमबत्ती, पत्र, भोजन संबंधी अतिरिक्त आवश्यकताओं तथा ऐसी वस्तुओं इत्यादि के लिए आठ आने या उससे अधिक पैसे देना। जो बात वह गुप्त तौर पर कह रहे हैं मैं उसे खुले तौर पर कह रहा हूं। ऐसे उपाय किये जायें जिनसे इन देशभक्तों को रिहा किया जा सके और देश की वर्तमान स्थिति की भलाई के लिए उनकी सेवाओं का लाभ उठाया जाये।

12
उड़ीसा में अकाल*

महोदय, बंगाल में अकाल की जो विभीषिका छाई हुई है उसे मानव निर्मित कहा गया है लेकिन यह उड़ीसा प्रान्त में थोप दिया गया है। जहां का मैं सदस्य हूं यह अकाल केन्द्र सरकार द्वारा इसकी कमजोरियों, दूरदर्शिता की कमी और गैर संगठित गतिविधियों के कारण थोपा गया है। यह सभी बातें वहां बताई जा सकती हैं और भावी गतिविधियों के लिए सरकार इसे नोट भी कर सकती है। यहां मैं यह बात कहूंगा कि यह अत्यन्त खेदजनक है कि अनावश्यक और अवांछनीय राजनैतिक प्रचार वहां किया जा रहा है और उस प्रचार से लोगों की परेशानी का लाभ उठाते हुये पैसा बनाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त अब मैं बताऊंगा कि मेरे प्रान्त में खाद्यान्न की कमी कैसे हुई। प्रारम्भ में उड़ीसा के किसानों की सामान्य आर्थिक परिस्थितियों के बारे में बताऊंगा। पिछली 12 अगस्त को राज्य परिषद में खाद्य संबंधी चर्चा के दौरान मेरे सम्मानीय मित्र सरदार जोगेन्द्र सिंह जी के वक्तव्य का उल्लेख सदन में करूंगा। उनके वक्तव्य के पिछले तीन कालमों में काफी दिलचस्प आंकड़े दिये गये हैं प्रति व्यक्ति उत्पादन औंस और मन में और विभिन्न प्रान्तों में खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति खपत के बारे में दिया गया है। यहां मैं बताना चाहूंगा कि उड़ीसा में भुखमरी बनी ही रहती है। यह हमेशा भुखमरी के कगार पर रहता है। उड़ीसा में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति उत्पादन 19.6 औंस है और प्रति व्यक्ति खपत मात्र 13.0 औंस खाद्यान्न है। सी॰ पी॰ के पड़ौसी प्रान्तों में प्रति व्यक्ति उत्पादन 26.5 औंस है और खपत 22.8 औंस है। सिंध में, प्रतिदिन प्रति व्यक्ति उत्पादन 28.6 औंस और खपत 20.6 औंस है। उड़ीसा के किसानों के पास मांस, अंडों, फलों आदि जैसी खाद्य सामग्री नहीं है जबकि एन॰डब्ल्यू॰ एफ॰पी॰ और यहां तक कि सिंध के किसानों को यह सब उपलब्ध है। यह 13.0 औंस खाद्यान्न धान है न कि गेहूं अथवा चावल। उड़ीसा में गेहूं नहीं खाया जाता। इस एक और बात को भी दृष्टिगत रखना है। गैर तटीय जिले उत्पादन और खपत की दृष्टि से ज्यादा समृद्ध है।

---

*"खाद्य स्थिति" संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान बोलते हुये।
केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद, 16 नवम्बर, 1943 पृष्ठ सं॰ 372-75

चावल के सम्बन्ध में प्रति व्यक्ति खपत की यदि गणना करें तो यह लगभग 6 या 7 औंस आयेगा। अर्थात् 15 या 17 तोला चावल। उड़ीसा के किसानों को जानने वाला व्यक्ति यह जानता ही होगा कि उड़ीसा के किसान बिना प्याज के और कभी कभी बिना नमक के चावल खाते हैं। किसानों को अपना धान बेचना होता है क्योंकि उसके पास अपनी जमीन का किराया, कर तथा अपनी छोटी-मोटी जरूरतों जैसे कि नमक, कपड़े आदि के लिये पैसा नहीं होता है। बतायी गई तालिका में मेरे माननीय मित्र द्वारा दिये गये आंकड़ों के अनुसार, उड़ीसा से प्रति वर्ष औसतन 187,000 टन खाद्यान्न निर्यात किया जाता है जबकि यहां अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता है। उड़ीसा के किसानों के पास अपनी सामान्य जरूरतों को पूरा करने के लिये पैसा नहीं है उन्हें अपने उत्पादनों को बेचना पड़ता है। यह कोई अतिरिक्त पैदावार नहीं है। बर्मा से लोगों के वापिस आने के कारण उड़ीसा की हालत बिगड़ गई है। कलकत्ता और असम की बमबारी की वजह से, इस तरह के लोगों की फौज भी उन स्थानों से वापिस आ गई थी। सामान्य वर्षों में प्रान्त से हम 187,000 टन अथवा 45 लाख मन धान अथवा 80 लाख मन चावल बाहर भेजा करते थे। इसमें कोई खास अन्तर नहीं है। यदि निर्यात थोड़ा ज्यादा होता है और उत्पादन थोड़ा कम तो हम निश्चय ही सूखे की जकड़ में होंगे। केन्द्रीय सरकार को सतर्क रहना चाहिये। केवल सिद्धान्त रूप में खाद्यान्न नियंत्रण से काम नहीं चलेगा। इन छोटे-छोटे ब्यौरों का पता लगाना चाहिये और सावधानीपूर्वक इन पर ध्यान देना चाहिये।

जब पिछले वर्ष यह अपेक्षा की गई थी कि सभी अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पन्न करने वाले प्रान्तों को खाद्यान्नों की कमी वाले क्षेत्रों की मदद करनी चाहिये, हमारी प्रान्तीय सरकार ने पिछले वर्ष के स्टाक की सावधानीपूर्वक गणना की और इस वर्ष के मध्य तक 18 लाख मन चावल भेज दिया था। अचानक ही कलकत्ता में स्थिति बहुत ही खराब हो गई तथा केन्द्र सरकार के नियंत्रण से बाहर हो गई तथा भारत के पूर्वी भाग में मुक्त व्यापार की घोषणा कर दी गई थी। उस समय उड़ीसा के प्रीमीयर ने जो कुछ कहा, अनेकों माननीय सदस्यों ने उसे समझा होगा। उन्होंने कहा था कि यदि मुक्त व्यापार जारी रहेगा, तो मंत्रालय के पास सिवाय इस्तीफे के और कोई विकल्प नहीं रहेगा। इस बारे में सार्वजनिक वक्तव्य दिया गया था। परन्तु इसी बीच 10 लाख मन चावल बंगाल भेजा गया था 4 लाख मन स्टाकिस्टों के पास उस प्रान्त को भेजने के लिये जमा किया गया था। जब डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने निःशुल्क भोजन दिये जाने की अपील की, इस 4 लाख मन को उड़ीसा के प्रीमीयम द्वारा बंगाल भेजने की अनुमति दी गई थी। इस महीने की 4 तारीख को इसी प्रीमीयर द्वारा एक वक्तव्य दिया गया था कि इस स्टाक में से मात्र $1^{1/2}$ लाख मन चावल ही उस तिथि तक बंगाल को भेजा गया था।

जब यह स्थिति थी तो प्रान्तीय सरकार किसी न किसी तरह गैर-तटीय जिलों से, धान मंगवाना चाहती थी जहां कि सम्भवतः स्थिति से निपटने के लिये कुछ अतिरिक्त धान उपलब्ध था। परन्तु प्रीमियर के पिछले वक्तव्य में यह स्पष्ट कर दिया गया था 'कि कोई भी परिवहन सुविधा उपलब्ध नहीं थी', तथा गंजम के जिलाधीश के शब्दों में "भुखमरी देश में फैली हुई हैं" और आज हम अकाल की चपेट में हैं। किस की वजह से यह अकाल पड़ा और किस ने हमारे लोगों को इससे प्रभावति किया। गंजम, पुरी, बालासौर में सभी तटर्वीय जिले अकाल की चपेट में थे। संक्षेप में, यह उड़ीसा के अकाल का इतिहास है।

एक और बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है। मैंने देखा कि कुछ देशभक्त लोग मानवीय आधारों पर पुरी में निःशुल्क भोजन की व्यवस्था करना चाहते थे और उन्हें स्थानीय बाजार से कुछ चावल मिल गया। संभवतः कुछ दुकानदारों को सम्बलपुर से खुद निजी वाहन की व्यवस्था करने पर चावल मिल भी गया। परन्तु भूख से तड़पते लोगों की मुश्किलात यह थी कि उनके पास इसे खरीदने के लिये पैसा नहीं था। चावल खरीदने के लिये पैसे के अभाव में लोगों की मौतें हुईं। यह एक विशेष प्रकार की स्थिति है और इस पर ध्यान दिया जाना चाहिये। स्टरलिंग (पाउन्ड) संतुलन, मुद्रास्फीति और अन्य ऐसे ही मुद्रा बनाने वाले तरीकों से उड़ीसा के निर्धन किसानों को इन्हें धन मुहैय्या कराना चाहिये। उड़ीसा को धन दिया जाना चाहिये।

मैं आपूर्ति विभाग समिति का इसके गठन किये जाने के समय से सदस्य हूं। मैं महसूस करता हूं कि पैसा पूरे भारतवर्ष में दिया जा रहा था। उड़ीसा को कोई धनराशि नहीं दी जा रही थी क्योंकि वहां कोई ऐसा उद्योग नहीं था जो कि युद्ध सम्बन्धी सामग्री की आपूर्ति करता। मैं समिति में इस मुद्दे पर भी जोर दूंगा कि मेरे निर्धन प्रान्त की ओर श्री मोहम्मद जफारुल्लाह खान तथा श्री एच॰ पी॰ मोदी द्वारा जताई गई सहानुभूति के लिये धन्यवाद करता हूं। कुछ छोटे उद्योग जैसे कि मिट्टी, चीनी मिट्टी के बर्तन बनाना, कलईकारी, मछलियों को सुखाना इत्यादि थोड़ी सी पूंजी से उड़ीसा में लगाये जा सकते हैं।

आज सच तो यह है कि युद्ध आपूर्ति हेतु आपने इस देश से 600 करोड़ रुपये का सामान खरीदा है, उड़ीसा का योगदान इसमें मात्र कुछ लाख रुपये ही है। मुझे वाणिज्य और परिवहन विभाग जाने को कहा गया और फिर इधर से उधर और उधर से इधर, परन्तु मुझे कहीं कोई सफलता नहीं मिली। इस तरह के गैर-संगठन से सरकार नहीं बनती है; आपको एक-दूसरे के साथ समुचित समन्वय तथा सहयोग से विभागों को संगठित करना होगा। यह महसूस किया गया है कि एक शक्तिशाली सरकार की आवश्यकता है। परन्तु शक्तिशाली सरकार अभी भी उत्पीड़ित करने वाली हो सकती है और लोगों में भय पैदा कर सकती है। इसे एक एकात्मक संस्था बनाने के लिये समुचित रूप में सगंठित

किया जाना चाहिये। जब कभी भी आवश्यक हो एक विभाग को दूसरे विभाग की मदद की आशा करनी चाहिये।

इस सन्दर्भ में, मैं एक और बात बताऊंगा जो कि महत्वपूर्ण है। उड़ीसा में कारखानों के नाम पर केवल चावल मिलें हैं। मैं कहूंगा कि यदि हो सके तो इन चावल मिलों को तुरन्त बन्द कर दिया जाये क्योंकि ये सबसे ज्यादा जमाखोर हैं। और इनमें से अनेक मिल मालिकों का भूमि से अधिक लगाव नहीं है, वे भी बहुत से व्यापारियों तथा और लोगों की तरह उड़ीसा में बाहर से आते हैं। वे केवल जमाखोर ही नहीं हैं, बल्कि वे न्याय के (अन्धे) देवता को भी भ्रष्ट बना सकते हैं। इसके अलावा वे बुहत कम लोगों को नौकरी पर रखते हैं। इस क्षेत्र में एक ही फैक्टरी है—ग्लास फैक्टरी जिसमें लगभग 600 मजदूर हैं। ये फैक्टरी मेरे घर के पास है और लगभग छः माह पूर्व मैंने पाया कि प्रबंधकों ने वहां बहुत कम मजदूर रखे हुये थे जबकि उन्हें युद्ध सामग्री की सप्लाई के आर्डर भी मिले थे। मेरे सवाल पर उन्होंने बताया कि उनके पास कोयला नहीं है। मैं प्रांतीय सरकार के पास गया और उन्होंने बताया कि प्रतिमाह 15 मालडिब्बों की सिफारिश की गई है। मैं परिवहन और वाणिज्य विभाग गया। उन्होंने क्या बताया अथवा क्या किया, वह सब जहां बताने के जरूरत नहीं। कोयला न मिलने के कारण ग्लास फैक्टरी आज बंद हो गई है जबकि चावल मिलों के लिये कोयला खूब सप्लाई हो रहा है जिसमें से काफी तो आजकल काले बाजार में बेचा जा रहा है।

उड़ीसा में तीन हवाई अड्डे हैं और बहुत से सदस्यों ने सम्भवतः यह महाराजा पारलाकिमेदी, उड़ीसा के प्रीमियर का वक्तव्य पढ़ा होगा जो उन्होंने इन हवाई अड्डों के लिये मजदूर भी बाहर से यानि सेन्ट्रल प्रांविस और मालाबार से लाये जाने का विरोध करते हुए दिया था। उड़ीसा अपने मजदूरों के लिये प्रसिद्ध है और उड़ीसा मजदूर शीघ्र कौशल प्राप्त करने के लिये सुविख्यात है।

13

संयुक्त राष्ट्र संघ के स्थायी खाद्य एवं कृषि के संगठन के गठन हेतु संकल्प*

संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थायी तौर पर खाद्य और कृषि संगठन की स्थापना संबंधी संकल्प के प्रस्तावक ने "हाट स्प्रिंगज़" में हुए सम्मेलन की बड़ी आशावादी तस्वीर दिखाई है। उन्होंने हमें यह जानकारी दी कि सम्मेलन में आये 44 अथवा 45 राष्ट्रों में भारत भी एक था और उसका प्रतिनिधित्व हमारे एजेंट जनरल ने किया। सदन में ऐसी बात सुनकर बहुत खुशी हुई विशेषकर भारतवासियों का मियाभिमान संतुष्ट हुआ जो पराधीन हैं और किसी भी तरह स्वतंत्र होना चाहते हैं ताकि उनकी गणना विश्व के स्वतंत्र राष्ट्रों में हो सके। चूंकि अब मेरे मित्र श्री नियोगी ने भ्रम दूर कर दिया है इसलिए टाइसन महोदय अपनी राय पर पुनर्विचार करें और यह सोचें कि श्री नियोगी जैसे अन्य माननीय सदस्यों को आश्वस्त करने के लिए उन्हें क्या वचन देना चाहिए।

महोदय, मैं यह स्वीकार करता हूं कि मुझे दी गई इस रिपोर्ट के अतिरिक्त कोई अन्य रिपोर्ट प्राप्त नहीं है जैसे कि एजेंट जनरल सर गिरिजा शंकर की रिपोर्ट, जब मैंने इस रिपोर्ट को पढ़ा तो मुझे लगा दाल में कुछ काला है। सबसे पहले मैंने रिपोर्ट के उस हिस्से को देखा जिसमें इस संगठन को दिये जाने वाले योगदान की प्रतिशतता का हवाला दिया था और यह स्वाभाविक भी था। पढ़ने पर मुझे पता चला कि 25 प्रतिशत योगदान अमरीका का, 15 प्रतिशत इंग्लैंड का होगा और फिर सोवियत संघ का स्थान है। 17 करोड़ जनसंख्या वाले इस देश का विशाल क्षेत्र मास्कों से लेकर समरकंद तक और कीव से वलादीवस्तोक तक फैला है। उसका योगदान केवल 8 प्रतिशत है। फिर चीन का स्थान है जिसे 44 करोड़ लोगों का पेट पालना पड़ता है। उसका हिस्सा केवल 6 प्रतिशत होगा। भारत की बारी उसके बाद है और उसका हिस्सा केवल 4.25 प्रतिशत है। और ब्रिटिश साम्राज्य में शायद यही एक ऐसा बढ़ती हुई जनसंख्या वाला खेतिहर देश है जिसमें इतनी अधिक कृषि योग्य भूमि है। आखिर इस योजना का उद्देश्य क्या है यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। यह सर्वविदित है और जैसे कि आशंका है कि इंग्लैंड और अमरीका युद्ध के उपरांत भारत जैसी मंडियों को हथियाना चाहते हैं। जहां तक इस

*केन्द्रीय विधान सभा वाद विवाद, 21 नवम्बर, 1944, पृ० 1138—40

का संबंध है अमरीका को तो कुछ हद तक खेतिहर देश कहा जा सकता है पर इंग्लैंड इसका दावा कैसे कर सकता है। वहां क्या उत्पादन होता है जौ का थोड़ा बहुत उत्पादन होता है वहां तो शायद मोती बनाने या विटामिन की गोलिया इत्यादि ऐसी चीजें बनाने का काम होता है? क्या यह विश्व को अथवा साम्राज्यवादी देशों को दिया जाने वाला दान है। इंग्लैंड क्यों 15 प्रतिशत देगा? अगर सम्मेलन में कोई सही बात होती तो भारत, चीन और सोवियत संघ को आधे से अधिक देने के लिए कहा जाता। इसलिए मैं कहता हूं कि यह शोषण नहीं तो क्या है जैसाकि मेरे माननीय मित्र श्री नियोगी ने कहा है कि भारत जैसे देशों की मंडियों और उनके कच्चे माल को हथियाने का तरीका है। निश्चय ही इसके पीछे कोई बात है। किसी को भी इस पर शुब्हा हो सकता है। समूचा संगठन हमारा होना चाहिए। इंग्लैंड को तो इस मामले में बहुत कम महत्व दिया जाना चाहिए था। सदन को इस बारे में माननीय सदस्य से निश्चित वक्तव्य और वचन लेने का पूरा हक है कि भारत इस संगठन में देश के लोगों का भलाई के लिए ही शामिल होगा। हम ऐसा आश्वासन इसलिए चाहते हैं कि हमें शक है कि इसके पीछे कोई चाल न हो। मान लीजिए अगर कोई सहकारी खेती का कार्यक्रम हो जिसमें हजारों ट्रैक्टरों की जरूरत पड़ेगी जोकि भारत के पास नहीं हैं और जो हमें दिए जायेंगे जैसा कि नियोगी ने कहा भी कच्चा माल देने के अलवा हमें उन्हें भी लेना पड़ेगा। रसायनिक उर्वरकों को ले लीजिए जिनका उत्पादन भारत में नहीं होता और जिसके उत्पादन के लिए भारत में मशीनरी भी नहीं है उनके उत्पादन की सिफारिश की जा सकती है जिसके लिए मशीनरी तुरंत इंग्लैंड से निर्यात करवाई जायेगी क्योंकि खाद्य उत्पादन की प्रक्रिया तो चलती रहनी चाहिए। हो सकता है इस तरह की कई चीजें इंग्लैंड युद्धोपरांत अपने यहां उत्पादित करे और भारत में बेचे। इसलिए सदन में साफ वायदा किया जाये कि इस संगठन के गठन के पीछे ऐसा कोई विचार नहीं है अगर कोई ऐसा विचार या प्रस्ताव होगा जिससे भारत का शोषण होता है तो भारत को उसकी खिलाफत का हक होगा और वह अपनी सदस्यता समाप्त कर देगा। यह तो प्रश्न का आर्थिक पहलू है।

एक अन्य पहलू भी है—संवैधानिक पहलू और भारत सरकार को इस पर बड़े ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। इस संगठन के गठन के संबंध में सरकार को हमारी सहमति प्राप्त होगी। लेकिन जहां तक भारत का संबंध है अगर यह संगठन केवल पैम्पलेट लेखन वाला संगठन सिद्ध हुआ या मद्रास की क्रिश्चियन ट्रैक्ट सोसायटी वाली सोसाइटी की भांति कोई ट्रैक्ट सोसाइटी हुई तो क्या फायदा होगा। कुछ टेक्ट दिये जायेंगे कुछ निर्देश दिये जायेंगे और केन्द्रीय संगठन द्वारा कुछ विशेषतः सलाह दी जायेगी। शायद सभी देशी भाषाओं में उनका अनुवाद भी हो और दिल्ली से उन्हें भेजा जाये ताकि प्रान्तों में कृषक उन्हें पढ़ सकें। इसका क्या लाभ होगा अगर केन्द्र को इतने अधिक स्वायतशासी प्रान्तों के साथ संघर्ष करना पड़े? आप जहां एक स्पष्ट वक्तव्य और वचन दें

कि जहां तक खेती का संबंध है केन्द्र और प्रान्तों के बीच वर्तमान व्यवस्था को बदला जायेगा लेकिन यदि यही व्यवस्था बनी रहती है अर्थात् यदि प्रान्त अपनी गतिविधियों में स्वायतशाली रहते हैं जैसेकि वे अब हैं तो भारत सरकार को यहां आने से पहले सभी प्रान्तों का समर्थन प्राप्त कर लेना चाहिए था। अन्यथा जैसा हिन्दु उत्तराधिकार के मामले में हुआ उसी प्रकार हम इस खाद्य उत्पादन के मामले में भी गलत सिरे से शुरूआत कर रहे हैं। आप इस खाद्य योजना को किस प्रकार चालू कर सकते हैं? जमीन के बारे में आपके यहां अपनी एक व्यवस्था है क्या आप केन्द्र में रहकर भूमि पद्धति के बारे में कुछ कर सकते हैं। बाढ़ की समस्या है। नदियां केवल प्रान्तों तक सीमित नहीं वह कई प्रान्तों से गुजरती हैं। फिर भारत के सभी लोगों की एक औसतन खाद्य खपत है। उड़ीसा में प्रति व्यकित खाद्यान्न खपत 13 औंस हैं और खाद्यान्न के मामले में यह बेशी वाला प्रान्त है और बंगाल में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न खपत 19 औंस है जबकि खाद्यान्न के मामले में यह कमी वाल क्षेत्र है और फिर सैंट्रल प्रोविन्सज जिनमें प्रति व्यक्ति खाद्यान्न खपत 30 औंस तक है। आप बराबरी कैसे कर सकते हैं। सभी के लिए साम्यिक मान कैसे हो सकता है। आप केन्द्र में ऐसा नहीं कर सकते। यद्यपि संविधान अधियिनम में कुछ संशोधन करके आपने खाद्य समस्या को हल करने में उसका कुछ हद तक फायदा उठाया है। लेकिन फिर भी 18 औंस प्रति व्यक्ति खपत वाले उड़ीसा जैसे तथा 80 औंस खपत वाले सैंट्रल प्रोविन्सिज बरकरार हैं। खाद्य समस्या से निपटने के लिए युद्ध के कारण आपात स्थिति की घोषणा करके आपने प्रान्तों में अस्थायी तौर पर ही सही, सांविधिक उपबंधों द्वारा नियंत्रण किया है अपने निर्देश मनवाये हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि खाद्य उत्पादन और कृषि के मामले में क्या आप स्थायी तौर पर कोई सांविधिक उपबंध करने जा रहे हैं। इस प्रश्न का उत्तर आपको देना होगा क्योंकि यह विषय प्रान्तों से संबंधित है ऐसे मामले में आप सांविधिक शक्तियों के अभाव में प्रान्तीय क्षेत्रों पर नियंत्रण नहीं रख सकते। कुछ निर्देश नहीं दे सकते। मैं आपको एक उदाहरण देता हूं।

भारत सरकार अधिक अन्न उपजाओं आन्दोलन में लगी है। करोड़ों रूपये इस पर खर्च हो रहे हैं लेकिन इस मामले में हो क्या रहा है अगर हम यह प्रश्न पूछते हैं तो उत्तर के तौर पर कुछ आंकड़े दे दिये जाते हैं कि लाखों एकड़ अधिक भूमि कृषि योग्य बनाई गई है। कीमतें उसी तरह ऊंची हैं। कीमतों में 300 प्रतिशत वृद्धि हुई है और ऐसे हालात में हर किसान रेतीले और पहाड़ियों नदी तलों ओर पहाड़ियों की ढलवान चारागाहों पर भी खेती करने को मजबूर है। अगर आप इस सब को भी खेती योग्य भूमि में शामिल करते हैं और कहते है वृद्धि हुई है तो हम लाचार हैं। वास्तविक स्थिति वह नहीं है जो आप बताते हैं। मैं जानता हूं कि प्रांतों में कैसे काम हो रहा है। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूं। पैसा बर्बाद हो रहा है। लूटा जा रहा है। एक मामले में जबकि बीज बांटने की बात थी उसके लिए कर्मचारियों को नियुक्त किया गया। बीज के लिए रखे हुए

बढ़िया धान को चावल बनाकर मंड़ी में बेच दिया गया और लाभ कृषक और कर्मचारी ने आपस में बांट लिया सब जगह यही कुछ हो रहा है। केवल मेरा प्रांत इसका अकेला उदाहरण नहीं है। अगर यही व्यवस्था है तो हमें इसे स्वीकार करने के लिए कहने का क्या फायदा। क्या हम अपनी देशीभाषा में केवल पैम्पलेट पढ़े? इस स्वीकृति का हमें क्या लाभ? इसलिए मैं माननीय गृह सदस्य से अनुरोध करता हूं कि वह हमें यह वचन दे कि खेती से संबंधित मामलों में प्रांतों को केन्द्र का नियंत्रण और निर्देश स्वीकार करना होगा। इसके लिए सांविधिक उपबंध किये जाये अथवा सरकार का रूप अगले संविधान में वर्तमान की अपेक्षा अधिक एकात्मक बनाया जाए। मैं इन्ही दो मुद्दों का-आर्थिक और संवैधानिक यहां उल्लेख करना चाहता हूं लेकिन मैं जानता हूं कि समग्र सभा प्रस्तुत संकल्प का समर्थन करेगी और अब मैं इसका विरोध नहीं कर सकता।

14
हिन्दू विवाह नियोग्यता निवारण विधेयक*

विधेयक को पिछले मौके पर वापस लिए जाने पर मैंने सोचा था कि वह कम से कम इस रूप में दुबारा चर्चा के लिए इस सदन में नहीं आयेगा। **पिछली बार एक प्रवर समिति गठित किए जाने का प्रस्ताव था और मैं देख रहा हूं कि अब एक दूसरी प्रवर समिति का प्रस्ताव है और मैं उन दोनों में बहुत थोड़ा अन्तर देखकर चकित हूं। मैं नहीं समझ पाया था कि आखिर इसका असली मतलब क्या है। सम्भवतः समिति को आज के व्यावहारिक, गैर बुद्धिजीवी और गैर-सनातनी विचारों के परिप्रेक्ष्य में अधिक प्रजातान्त्रिक बनाने का प्रयास किया गया है। पिछली समिति में भाई परमानन्द, मेरा स्वयं का और कई अन्य के नाम थे। हम ब्राहमण हैं। लेकिन समिति को प्रजातान्त्रिक नहीं पाया गया और चेपमैन-मार्टिमर, सर रतनजी दलाल और श्री हुसैन भाई लालजी जैसे बन्धुओं को इसमें शामिल किया गया। मैं उसमें उनकी उपस्थिति से प्रसन्न हूं। आज वह अधिक प्रजातांत्रिक है। लेकिन भारत में बहुप्रचलित एक आम वाक्यांश है "सभी जातियां और समुदाय।" यह उपयुक्त अवसर तो नहीं है लेकिन यदि प्रस्ताव रखा जाता है तो मैं लगभग आधा दर्जन नाम प्रस्तावित करूंगा जिसमें उन जातियों के लोग भी होंगे जो समिति में शामिल नहीं किए गये। यह एक अत्यन्त विलक्षण और महत्वपूर्ण बात है जिसने मुझे आघात पहुंचाया है। शायद यही वह व्यावहारिक तरीका है जिससे हिन्दू समाज में सुधार लाया जा सकता है। कुछ लोग ऐसे हैं जिनकी कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग ऐसे हैं जिनकी प्रजातांत्रिक प्रयोजन के लिए आवश्यकता है और ऐसे लोग हिंदू समाज को बेहतर बनाने के लिए सुधार लाने में सहायता कर सकते हैं।

मेरे मित्र डा० जी० वी० देशमुख सदैव मनु जैसे विधि निर्माताओं को उद्धृत करते हैं। मुझे नहीं मालूम कि वह श्री मनु अथवा डा० मनु को जानते हैं जिन्हें अत्यधिक विभिन्न परिस्थितियों में काम करना पड़ा था। उनके पास इस तरह की कोई विधायिक नहीं थी। जिसमें विचारों को विधि का रूप देकर लागू किया जाता है। हिन्दू संस्कृति एक भिन्न

---

*केन्द्रीय विधान सभा वाद विवाद 14 फरवरी, 1945, पृ० 358—61

**इसी शीर्षक के अंतर्गत विधेयक का प्रस्ताव, जिसे श्री गोविन्द वी० देशमुख ने प्रस्तुत किया था, 10 नवम्बर, 1943 को विधान सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

प्रकार के संगठन पर आधारित है और यह अन्य संस्कृतियों से अवधारणा की दृष्टि से भिन्न है। मनु ने समाज के एक छोटे से वर्ग के लिए कुछ आदर्श बनाये थे। मेरे मित्र ने वासुदेव और देवकी, पांडु और कुन्ती जैसे दृष्टान्त उद्धृत किए हैं। मुझे दुख है कि वह सदन को यह बताना भूल गये कि हमारे भगवान श्रीकृष्ण ने अपने फुफुरे भाई अर्जुन को सांठगांठ करके अपनी बहन का अपहरण कर लेने दिया था। सम्भवतः उन्होंने स्वेतकेतु के बारे में नहीं सुना है और मैं उन्हें याद दिलाना चाहता हूं कि उन दिनों अतिथि आतिथेय के घर में उसकी ही पत्नी का भोग कर सकता था और यदि चाहे तो उसके साथ संभोग भी कर सकता था। पुराणों और महाभारत में भी ऐसा ही है। यह हमारी परम्परा है। पुराणों में मानव-बलि के युग से लेकर स्वयं डा० देशमुख के युग तक की घटनायें और रीतियां दर्ज हैं।

मैं मनु जैसे प्राचीन विधि निर्माताओं की बात कर रहा था। उनमें परंपराओं और संस्थाओं का चुनाव करने और स्थापित करने में भेदभाव बरतने की असामान्य दृष्टि थी। मैंने श्वेतकेतु का दृष्टान्त दिया था। मेरे कुछेक मित्रों ने यह दृष्टान्त देने पर आपत्ति की है, क्योंकि उनके मतानुसार श्वेतकेतु के समय तक विवाह प्रथा का विकास नहीं हुआ था। इस पर वाद-विवाद हो सकता है। लेकिन द्रोपदी का उदाहरण लीजिए। मनु ने हिन्दु समाज में द्रौपदी के विवाह जैसे विवाह की कदापि अनुमति नहीं दी थी। उन्होंने बहु-पति प्रथा के लिए समाज को आदेश नहीं दिए थे। समाज की उस समय प्रचलित स्थितियां भिन्न थी। यह कहना कि हम सभी को मनु होना चाहिए और हमें मनु के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए, इससे हमारा अहं भले ही सन्तुष्ट हो जाए, लेकिन व्यक्तिगत अहं और सच्चाई साथ साथ नहीं चलते हैं। यदि मैं इतिहास की बात करूं तो डा० देशमुख जैसे मेरे मित्र शायद यह मानेंगे कि उन दिनों आर्य लोग, जिन्होंने उत्तरी भारत के कुछ भागों को विजित कर लिया था, वे चाहते थे कि वे सांस्कृतिक रूप से उन विदेशी लोगों में घुल-मिल जाए जिनके बीच वे रहते थे और जिनमें अपनी जाति का प्रचार करना था। इस तरह से घुलने मिलने से उनमें जातिगत शुद्धता का जो भाव आया था अक्षुण्ण रहा: आज भी उनमें से कुछ लोग, जो अपने को आर्य मानते हैं मेरा अभिप्राय जर्मन लोगों से है—आर्य परम्परा के रूप में अपनी जातिगत शुद्धता का भाव रखते हैं। उस समय अपनी जातिगत एकता को बचाए रखने के लिए भारत के आर्य लोगों को अपनी चचेरी/ममेरी/फुफेरी/मौसेरी बहनों से शादी करनी पड़ती थी और उनके साथ समावेशन की एकता को बनाए रखने के लिए उनसे हुए सभी तरह से बच्चों को वैध मान लिया जाता था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि मनु ने जो आठ तरह की शादियां बताई हैं उन्हें उन कानूनों के लिए दृष्टांत मान लिया जाए जिन्हें आप आज बनाना चाहते हैं।

मेरे मित्र ने कतिपय कुछ दृष्टान्त देकर व्याख्याएं की हैं, जो मेरे तो मत में प्रत्यक्षतः

गलत है। गोत्र की व्याख्या करने में वह इसके मूल तक गए हैं लेकिन वह शाखाओं और फलों को नहीं देख पा रहे हैं क्योंकि उनकी नजरें सदा जड़ों तक रहती हैं। गौत्र बना है गौ और त्रोय से—वह एक तथ्य है, और उन्हें पता है कि गौ का अर्थ गाय के साथ साथ पृथ्वी भी है तथा त्राय का अर्थ बचाना या सुरक्षित रखना है। लेकिन वह इसका अर्थ चरने का मैदान बताते हैं जो मैं नहीं समझ सकता। यह आदमी ही है जो धरती और गाय दोनों की रक्षा करता है। उन दिनों आर्य लोगों की सम्पत्ति उसकी जमीन का टुकड़ा होता था जो उसके गृह अथवा गृहस्थान के निकट होता था अथवा जंगल में होता था जहां कुछ चावल अथवा जौ की खेती होती थी। उनका धन गाय होती थी और गौ को सिक्का अथवा मुद्रा समझा जाता था और इस लिए प्राचीन शास्त्रों में "गोधन" एक बहुत सामान्य शब्द है। इस तरह जो व्यक्ति परिवार की सम्पति—गाय और भूमि—को सुरक्षित रखे वह गोत्र होता था। वह परिवार का मुखिया होता थाः रोम के कानूनों के अन्तर्गत भी आप देखेगें कि पिता ही वह व्यक्ति होता था जो परिवार की सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए उत्तरदायी होता था और इसलिए वह परिवार का मुखिया होता था। गौत्र का अर्थ कोई चरने का मैदान का टुकड़ा नहीं है।

फिर वह कहते हैं कि गोत्र तो पहले पांच थे फिर सात, तत्पश्चात् आठ और उसके बाद काफी संख्या में हो गए और उनके कथनानुसार इसका कोई अर्थ नहीं है। मुझे खेद है कि वह समझना नहीं चाहते थे या शायद जो समझते हों उसे कहना ही नहीं चाहते कि पहले कुछेक परिवार थे और इसलिए कुछ ही गौत्र थे, और बाद में जैसे ही परिवार फैले/बढ़े और विभिन्न स्थानों पर गए तथा बस गए वैसे ही गोत्रों की संख्या बढ़ गई; ज्यादा से ज्यादा पिता हो गए, अतः यह तथ्य नहीं है कि गोत्र का हमारे खून से कुछ लेना देना नहीं है। पीढ़ियों बाद काफी समय बाद आप इसे मानें या न मानें यह एक अलग प्रश्न है, लेकिन अपने को अपने श्रोताओं को यह कह कर धोखा न दें कि गोत्र का अर्थ एक चरागाह भूमि का टुकड़ा है।

इसके पश्चात् वह प्रवर की व्याख्या करते है। वह नहीं समझते कि यह क्या है। यदि इसका कोई अर्थ है तो वह है प्राचीन समय में कहीं पर रह रहे कुछ लोगों के पिता, पितामह और प्रपितामह। मैं उनकी बात समझ नहीं पाया। वह जोकि चीजों की जड़ तक जाया करते हैं, यहां पर उस तक नहीं गए और उन्होंने इसका अर्थ नहीं समझा। प्रवर का अर्थ है सर्वाधिक महत्वपूर्ण, प्रवर से "वर" शब्द बनता है जिसका अर्थ बड़ा है। एक ही गौत्र, को समय के साथ स्वाभाविक रूप से इतनी शाखाओं में बांटा गया है जो किसी वंशावली प्रवर अथवा उस वंशावली के महत्वपूर्ण व्यक्ति को इंगित करता है जिसका उल्लेख किया गया है। मेरा गौत्र कौशिक है। मेरा प्रवर, सही सहीं कहें तो मेरे प्रवरों की वंशावली क्रुसिक, अद्याभर्साना और विश्वमित्र है। इसका अर्थ वह नहीं है जो मेरे मित्र ने

बताया है। अतः अच्छा हो यदि वह इन बातों का अध्ययन करें और इनमें ठीक ढंग से भेद करें, यदि वह मनु नहीं तो इस युग में मनु की तरह के लोगों के समान होना चाहते हैं।

उनके यह कहने पर मुझे आश्चर्य हुआ कि विवाह का सन्तान से कोई सम्बन्ध नहीं है। सामाजिक संस्था के रूप में विवाह का क्या अर्थ है? कानून में विवाह का अर्थ है विवाह के परिणामस्वरूप हुए सन्तान की वैधता। यदि आप समझते हैं कि आपको केवल समागम के आनन्द के लिए विवाह करना चाहिए तो इसका कानून अथवा विधान से कोई मतलब नहीं है।

इसके बाद मैं विशेष रूप से यह जानना चाहता था कि क्या प्रवर या गौत्र से समाज में कोई कठिनाई उत्पन्न हुई है। उन्होंने उस मामले में कुछ नहीं कहा। मेरा कहना है कि इस सुधार के अभाव में समाज में कोई कठिनाई नहीं आई है।

यह मेरा विचार है। समागम में व्यक्तियों को जो आनन्द मिलता है वह कानूनी अथवा सामाजिक संस्था के रूप में विवाह के लिए आदर्श नहीं है। हमें ऐसे समागम को एक सामाजिक संस्था बनाने पर रोक लगानी होगी।

फिर शूद्रों को इस गोत्र में शामिल नहीं किया गया है। उनका इससे कुछ लेना देना नहीं है। यह ब्राह्मणों और ऊंची जाति के व्यक्तियों की संस्था है। मेरे मित्र को समझ लेना चाहिए कि यहां तक कि अत्यधिक सुसंस्कृत बंगाली कायस्थों को भी इस वर्ग में शामिल नहीं किया गया है। वे इस गौत्र या प्रवर का पालन नहीं करते हैं। इससे केवल उच्च जाति के हिन्दू और ब्राह्मण ही प्रभावित होते हैं। उच्च न्यायालय अब बताते हैं कि कौन उच्च जाति का है और कौन नहीं। विवाह के मामले में शूद्र गौत्र या प्रवर के बारे में नहीं सोचते और उच्चतम न्यायालय का कहना है कि बंगाली कायस्थ तक भी शूद्र हैं। तब भारत में किसके लिए इस कानून की आवश्यकता है?

इसके बाद मेरे मित्र ने सभी समुदायों से उनकी सहायता करने का अनुरोध किया है। उसका क्या आशय है कोई अन्य समुदाय इससे संबंधित नहीं है। केवल ब्राह्मण का ही इससे सम्बन्ध है। इसे सुधार के एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में दर्शाया जा रहा है। यह सुधार क्या है? इसका क्या महत्व है मैं इस बात को नहीं समझ पा रहा हूं कि ऐसी गैर महत्वपूर्ण बात के लिए इस सभा की अवमानना क्यों की जानी चाहिए। आप व्यर्थ में ही हिन्दुओं की भावना का अपमान कर रहे हैं? यदि इसकी कोई उपयोगिता है तो इसे समझा जा सकता है। पिछली बार, विधेयक के प्रस्तुतकर्त्ता को सिविल मैरिज अधिनियम अथवा उन मामलों में किसी प्रकार के पंजीकरण, जो उनके अनुसार अत्यधिक कठिनाई वाले मामले हैं, पर विचार करने का परामर्श दिया गया था। आर्य विवाह अधिनियम भी है

लेकिन यह ब्राह्मणों से संबंधित संस्था होने के संस्कारगत विधियों के अन्तर्गत कैसे आ सकती है? मैं एक ब्राह्मण हूं और वह भी देशमुख ब्राह्मण हूं। जब डा० देशमुख के हाथ में उनकी पत्नी का हाथ उनके पिता अथवा संरक्षक ने दिया था तो उन्हें महावाक्य अथवा महान कथन का ज्ञान होना चाहिए था। उस समय लड़की का पिता अपने परिवार का गौत्र बताता है और फिर दूल्हे के परिवार का गौत्र बताया जाता है और साथ-साथ पवित्र वेदों का मंत्रोच्चार करता है। यदि दूल्हे के मामले में वही गौत्र दोहरा दिया जाए तो क्या होगा उपहार अवैध हो जाएंगे और जैसे ही इसे दोहराया जाएगा पुजारी तथा पुस्तकाचार्य क्रुद्ध हो जाएंगे और संभवतः चले जाएंगे। अतः मेरा कहना है कि यह पूर्णतया ब्राह्मणों की संस्था है, कुछ विशेष मामलों में क्यों नहीं, यदि कोई सिविल मैरिज करता है अथवा आर्य समाज की रीति से विवाह करता है जो कि हिन्दू विवाह का ही एक रूप है। आप देश के ब्राह्मणों की भावनाओं को ठेस क्यों पहुंचा रहे हैं। मैं जानता हूं कि कुछ समुदायों में चचेरे भाई बहनों में शादियां होती हैं। परन्तु मैं नहीं समझता कि सगौत्रों में विवाह होता है।

मेरा कहना है कि विधेयक का प्रारूप दोषपूर्ण है। मैं नहीं जानता कि विधेयक के प्रस्तावक की क्या मंशा है। उनका कहना है कि:—

"हिन्दू विधि के किसी रिवाज, नियम अथवा व्याख्या के बावजूद भी विवाह, जो अन्यथा वैध है अवैध नहीं होगा क्योंकि

(क) यह समान गौत्र अथवा प्रवर के हिन्दुओं के बीच है; अथवा"

मैं जानना चाहता हूं कि इसमें कहां सपिण्ड को शामिल नहीं किया गया है? यह बात सच है कि मैं वकील नहीं हूं परन्तु विधेयक का प्रारूप प्रथम दृष्टया दोषपूर्ण है। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि सभी सपिण्डों को अन्यथा छोड़ा नहीं गया है आपको इसका विशेष रूप से उल्लेख करना चाहिए। मामले उच्च-न्यायालयों में जाएंगे। यह मजाक नहीं है आप इसकी व्याख्या नहीं कर पाएंगे। आपने इसके बारे में नहीं बताया और इसलिए किसी न किसी प्रकार से चचेरे भाई-बहिनों के विवाह करने के मार्ग में कुछ कमियां होंगी।

इसके अलावा उप-जातियों से संबंधित भी एक मुद्दा है। मैंने अपने जीवन में यह बात कभी नहीं सुनी है कि किसी उपजाति-विवाह, अर्थात् एक ही जाति से उप-जातियों में विवाह, के बारे में किसी ने कोई आपत्ति की हो। शायद कुछ रूढ़िवादी जातियों के व्यक्तियों ने कभी आपत्ति की हो और 5 अथवा 500 रु० लिए हों। केवल यही एक प्रतिबंध है। लेकिन मैंने कभी यह नहीं देखा कि ये विवाह असफल रहे हों। उपजातियों ने कभी आपत्ति नहीं की है और अन्तर्जातीय विवाह हो रहे हैं क्योंकि इन्हें एक जाति माना जाता है। इस लिए मैं अपने माननीय मित्र को बताना चाहता हूं कि उन्हें पिछली बार

विधेयक वापिस लेने का सही परामर्श दिया गया था और मैं उनसे आज भी यही अनुरोध करता हूं।

15
राष्ट्रीय युद्ध संगठन*

महोदय, राष्ट्रीय युद्ध संगठन में दो भाव निहित हैं: राष्ट्रीय और युद्ध संगठन। मैं अपने निजी अनुभव से यह कह सकता हूं कि यह न तो राष्ट्रीय है और न इसका संबंध युद्ध अथवा उसके संगठन से है। जनता का मनोबल बनाये रखने के लिये कुछ भी नहीं किया जा रहा है। उड़ीसा की पिछली सरकार जिसके गठन के प्रति मैं मुख्य रूप से उत्तरदायी था, की अवधि के दौरान तत्कालीन प्रधानमंत्री के अनुरोध पर मैंने संगठन के प्रमुख के रूप में संगठन के लिये कार्य करने का भार ग्रहण किया था। मैंने यह महसूस किया कि प्रकट रूप से यह एक गैर सरकारी संगठन था। किन्तु इसके अस्तित्व में केवल एक "सुरक्षित" गैर-सरकारी संगठन की अपेक्षा निहित थी और वास्तविक गैर सरकारी संगठन के अस्तित्व को नकार दिया गया था। यदि वास्तविक गैर सरकारी व्यक्तियों ने इस संगठन में सेवा करने की पेशकश की तो उसे स्वीकार नहीं किया गया। इस संगठन के प्रारम्भ होने के कुछ ही महीनों के भीतर एक ऐसा अवसर आया जब मुझे, जो एक गैर सरकारी व्यक्ति के तौर पर संगठन में शामिल था, सार्वजनिक रूप से त्याग पत्र देकर, इससे सभी संबंध तोड़ने पड़े थे। अपने त्यागपत्र में, मैंने यह कहा था कि इस संगठन में जब तक यह मनोवृति बनी रहेगी तब तक मेरे जैसा व्यक्ति इसमें सेवा नहीं कर सकता। संक्षेप में इस संगठन को मैं "एक लोक कण्टक" संगठन ही कह सकता हूं। ऐसा मैं केवल उड़ीसा प्रांत के कार्यकरण को ध्यान में रखकर ही कह रहा हूं क्योंकि अन्य प्रांतों के बारे में, मैं कुछ नहीं कह सकता।

हम लोग "बचत अभियान", "अधिक अन्न उपजाओ अभियान" और इसी प्रकार के अन्य उन अभियानों के बारे में सुनते आ रहे हैं, जो यह संगठन इन दिनों चला रहा है और जैसा कि सर्वविदित है — चाहे लोग कुछ कह न पायें, किन्तु उन्हें पता है कि हमारे खाद्य, नागरिक पूर्ति संगठन और अधिक अन्न उपजाओ संगठन में भ्रष्टाचार और रिश्वत खोरी व्याप्त है। जहां कर्मचारी भ्रष्टाचार और रिश्वत खोरी में लिप्त होते हैं, वहां उसके निराकरण का भी कोई उपाय होता है। आप ऐसे मामलों की जानकारी उच्च अधिकारियों

*केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद, 2 मार्च, 1945, का० 975-76

को दें और मेरा अपना व्यक्तिगत विचार है कि सभी जगह उच्च अधिकारी इन कामों में शामिल नहीं होगें अथवा वे इन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दे रहे होंगे। भ्रष्ट कर्मचारियों को दंडित करने का कोई न कोई रास्ता अवश्य है, किन्तु जहां तक गैर सरकारी व्यक्तियों का मामला है, उनमें सभी प्रकार के आवारा छोकरे और युवा व्यक्ति शामिल हैं उनके विरुद्ध आप कर ही क्या सकते हैं? वे लोगों में आंतक फैलाते हैं। लोगों से यह कहकर वे धमकी देते हैं "कि ऐसा कीजिये और वैसा कीजिये अन्यथा आपको भारत सुरक्षा नियमों के अधीन दंडित किया जायेगा।" वे आंतक फैलाते हैं और हर प्रकार के भ्रष्टाचार के लिये आधार तैयार करते हैं — कम से कम मेरे प्रांत में तो यही सब हो रहा है। प्रचार वाहन प्रचार करते हुए घूम रहा है और मुझे पता है कि कुछ लोग, यदि वे संघर्षशील व्यक्ति रहे भी हों तो अब इस युद्ध स्तर पर हो रहे इस प्रचार के कारण गैर-संघर्षशील व्यक्ति बन गये हैं।

भाग्यवश मेरे निर्वाचन क्षेत्र के व्यक्ति दारू पीने के आदी नहीं हैं किन्तु फिर भी संभवतः नए विचार केन्द्र के माध्यम से ही आगे बढ़ते हैं। नाच गानों की पार्टियों का आयोजन किया जाता है। एक बार पूछने पर मुझे बताया गया कि राष्ट्रीय युद्ध संगठन ने नाच गाने की पार्टियों का आयोजन किया है और गायक "पखवाड़ा बचत अभियान" के लिये गीत गायेंगे। ऐसे ही, इसी प्रकार के अन्य आयोजन किये जाते हैं। वस्तुतः ऐसे आयोजन चलते रहते हैं किन्तु मुझे नहीं ज्ञात है कि इन्हें कोई शराब आदि भी दी जाती है। संभवतः मैं इसके बारे में अधिकारपूर्वक कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि मेरा इस संगठन से कोई गहरा संबंध नहीं है।

महोदय, मेरा विचार इस सभा का अधिक समय लेने का नहीं है। मेरा यह दृढ़ मत है सरकार के "अधिक अन्न उपजाओ" अभियान अथवा "खरीद अभियान्" या "बचत अभियान" जैसे मामलों में, सरकार की सहायता के लिये यह संगठन चलते रहने चाहियें किन्तु वह सरकारी ही होने चाहिएं। क्या इस गैर सरकारी संगठन के माध्यम से आप अपने अधिकारियों की अप्रत्यक्ष रूप से भ्रष्टाचार के आरोपों से रक्षा नहीं कर रहे हैं? मेरा सरकार से अनुरोध है कि यदि सरकार चाहती है कि इस प्रकार का राष्ट्रीय युद्ध संगठन गठित हो और यदि सरकार चाहती है कि जनता संघर्षशील बने, तो सरकार को ऐसे तरीके नहीं अपनाने चाहिये जिससे लोगों को कष्ट मिलता हो और कर्मचारियों में भ्रष्टाचार फैलता हो।